385

उच्चतर माध्यमिक

नाट्यकला

प्रायोगिक पुस्तिका

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

385

उच्चतर माध्यमिक स्तर

नाट्यकला

प्रायोगिक पुस्तिका

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

आईएसओ 9001: 2008 प्रमाणित

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण 2023 First Edition 2023 (Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62 नोएडा - 201309
(उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। .... द्वारा मुद्रित।

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र (समिति अध्यक्ष)
पूर्व-कुलपति
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा
महाराष्ट्र-442005

प्रो. राम नाथ झा
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

प्रो. बलराम शुक्ल
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

श्री अमिताभ श्रीवास्तव
नाट्यकला विशेषज्ञ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक-भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

श्री अर्जुन देव चारण
उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
एवं संस्थापक रम्मत थियेटर ग्रुप, जोधपुर (राजस्थान)

प्रो. रजनीश मिश्रा
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

प्रो. पवन कुमार शर्मा
आचार्य,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,
मेरठ, उत्तर प्रदेश

डॉ. प्रवीण तिवारी
सह-आचार्य,
महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखण्ड
विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

श्री आसिफ अली हैदर खान
नाट्यकला विशेषज्ञ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

पाठ लेखक

प्रो. मीरा द्विवेदी
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. विजेन्द्र सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

डॉ. दानिश इकबाल
सहायक आचार्य (थियेटर), एजेकेएमसीआरसी
जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

डॉ. योगेश शर्मा
सह-आचार्य,
कलाकोश विभाग, इन्दिरा गांधी कला केन्द्र, नई दिल्ली

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
सहायक आचार्य, देशबंधु कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सुश्री प्रियंका रस्तोगी
अनुसंधात्री,
संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सम्पादक मण्डल

प्रो. राम नाथ झा
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

प्रो. रजनीश मिश्रा
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

डॉ. राम चंद्र
सहायक आचार्य, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज ऑफ वीमेन
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

ग्राफिक डिजाइनर एवं टीटीपी कार्य

मल्टी ग्राफिक्स
करोल बाग, नई दिल्ली

आप से दो बातें...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।
'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अङ्गभूत नाट्यकला का यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।
विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर नाट्य का फल रस का आस्वादन है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक सम्पन्न हों, यहीं प्रबल इच्छा है।

इस नए पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपके मन में देश और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का विकास करना, संस्कृति की रक्षा के लिए उचित प्रयत्न करने वाले श्रद्धावान शिक्षार्थियों को प्रेरित करना है तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान, संपदा, वैज्ञानिकता, सभी मनुष्यों के प्रति उपकारिकता की भावना का गर्व से जगत में प्रचार-प्रसार कर पाने में सक्षम बनाना, हमारे देश की नाट्य परंपरा को सामान्य जन मानस के लिए सर्व-सुलभ बनाना, भारतीय नाटककारों तथा उनकी कृतियों के प्रति सम्मान की भावना का विकास करना, नाट्य के विविध तत्त्वों (कथावस्तु, पात्र, रस, अभिनय, रंगमंच) से शिक्षार्थियों को परिचित कराना, नाट्य निर्माण से संबंधित यथा- नाट्य चयन, नाट्य निर्माण, नाट्य क्रियान्वयन हेतु मंच सज्जा, प्रकाश-ध्वनि-प्रभाव आदि से अवगत कराना है। यह पाठ्यक्रम शिक्षार्थी को एक उत्तम 'सहृदय' के रूप में परिवर्तित करने में भी सक्षम होगा।

शिक्षार्थी पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिये प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।
शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।
यह पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठ्यक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

नाट्यकला विषय, उच्चतर माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें।

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित है इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है- कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केन्द्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पाठ्यक्रम

नाट्यकला

मॉड्यूल-1 नाट्यकला का परिचय

1. भारत की नाट्य परम्परा : परिचय तथा इतिहास
2. नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय
3. नाट्य तथा अन्य कलाएँ
4. नाट्य का सौन्दर्यशास्त्र

मॉड्यूल-2 नाट्य के प्रमुख अंग

5. कथावस्तु परिचय
6. पात्र-योजना
7. अभिनय परिचय

मॉड्यूल-3 रस विमर्श

8. रस की अवधारणा
9. रससूत्र का परिचय तथा सहृदय की अवधारणा

मॉड्यूल-4 भारतीय नाटकों का परिचय

10. अभिज्ञानशाकुंतल
11. मृच्छकटिक
12. ध्रुवस्वामिनी
13. प्रबोधचंद्रोदय

मॉड्यूल-5 रंगमंचः तकनीक और अभिकल्पना

14. रंगमंच : परिचय तथा प्रकार
15. रंगसंगीत
16. नवरस साधना
17. मुद्राभिनय एवं मुखाभिनय

मॉड्यूल-6 लोकनाट्य का स्वरूप और प्रकार

18. भारत के प्रमुख लोक नाट्य और लोक नृत्य
19. लोकनाट्य में संगीत की भूमिका

प्रायोगिक पक्ष

मॉड्यूल-7 अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष

1. आंगिक अभिनय
2. वाचिक अभिनय
3. आहार्य अभिनय
4. सात्विक तथा चित्राभिनय

मॉड्यूल-8 नाट्य का प्रायोगिक पक्ष

5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय
6. मुद्राराक्षस

पाठ्यक्रम

क्र. सं.	विषय सूची	पृष्ठ संख्या
माड्यूल-7 अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष		
1.	आंगिक अभिनय	01-10
2.	वाचिक अभिनय	11-26
3.	आहार्य अभिनय	27-42
4.	सात्विक तथा चित्राभिनय	43-58
माड्यूल-8 नाट्य का प्रायोगिक पक्ष		
5.	रंगमंच तकनीक : एक परिचय	59-84
6.	मुद्राराक्षस	85-99
आदर्शन प्रश्न पत्र		100

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

विषय- नाट्यकला (385)

पाठयक्रम विभाजन- नाट्यकला (385) उच्चतर माध्यमिक स्तर

कुल पाठ - 19

मॉडयूल कुल अंक-60	शिक्षक अंकित मूल्यांकन पत्र (TMA)	सार्वजिनक परीक्षा (Public Examination)
1. नाट्यकला का परिचय (अंक-12)	1. भारत की नाट्य परंपरा : परिचय तथा इतिहास 2. नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय	3. नाट्य तथा अन्य कलाएँ 4. नाट्य का सौन्दर्य शास्त्र
2. नाट्य के प्रमुख अंग (अंक-10)	5. कथावस्तु परिचय	6. पात्र-योजना 7. अभिनय परिचय
3. रस-विमर्श (अंक-8)	-	8. रस की अवधारणा 9. रससूत्र का परिचय तथा सहृदय की अवधारणा
4. भारतीय नाटकों का परिचय (अंक-12)	12. ध्रुवस्वामिनी 13. प्रबोधचंद्रोदय	10. अभिज्ञानशाकुंतल 11. मृच्छकटिक
5. रंगमंच : तकनीक और अभिकल्पना (अंक-12)	14. रंगमंच : परिचय तथा प्रकार 17. मुद्राभिनय एवं मुखाभिनय	15. रंगसंगीत 16. नवरस साधना
6. लोकनाट्य का स्वरूप और प्रकार (अंक-6)	-	18. भारत के प्रमुख लोक नाट्य और लोक नृत्य 19. लोकनाट्य में संगीत की भूमिका

मॉडयूल	**सार्वजिनक परीक्षा (प्रायोगिक पक्ष)**	**कुल अंक-40**
7. अभिनय के प्रकार: प्रायोगिक पक्ष	1. आंगिक अभिनय : भेदोपभेद 2. वाचिक अभिनय 3. आहार्य अभिनय 4. सात्विक तथा चित्राभिनय	25
8. नाट्य का प्रायोगिक पक्ष		15
	5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय 6. मुद्राराक्षस	

मॉड्यूल-7

अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष

इस मॉड्यूल में चतुर्विध अभिनय-आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनय पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत हम अभिनय के प्रायोगिक पक्ष पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

1. आंगिक अभिनय
2. वाचिक अभिनय
3. आहार्य अभिनय
4. सात्विक तथा चित्राभिनय

टिप्पणी

1

आङ्गिक अभिनय

पूर्व पाठ में आङ्गिक अभिनय के स्वरूप की चर्चा की गई है। इस पाठ में अभिनय-प्रकारों में से एक आंगिक अभिनय के भेदोपभेदों का निरूपण किया जा रहा है। आंगिक अभिनय के तीनों प्रकारों- शरीरण मुखज और चेष्टाकृत अभिनय पर हम विस्तार से चर्चा करेंगे। शरीर के विभिन्न अङ्गों द्वारा प्रदर्शित किया जाने वाला अभिनय आङ्गिक अभिनय कहलाता है।

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- आंगिक अभिनय का सामान्य परिचय जानते हैं;
- मुखजाभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- शरीराभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- चेष्टाक्रियाभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- सामान्याभिनय को जानते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- आभ्यंतराभिनय को जानते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं; और
- बाह्याभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;

टिप्पणी

1.1 आङ्गिक अभिनय

सामान्यत: शरीर के विविध अंगों, उपांगों एवं प्रत्यंगों की विविध चेष्टाओं एवं भाव मुद्राओं द्वारा जिस सांकेतिक अर्थ का सृजन किया जाता है, वह आङ्गिक अभिनय है। आंगिक अभिनय तीन प्रकार का होता है - शरीरज, मुखज, और चेष्टाकृत अथवा चेष्टाक्रियाभिनय। इनमें शरीर के विविध अंगों और प्रत्यंगों द्वारा प्रदर्शित अभिनय शरीरज कहलाता है। केवल उपांगों द्वारा प्रदर्शित अभिनय मुखज कहलाता है तथा चेष्टाओं द्वारा किया जाने वाला अभिनय चेष्टाकृत अभिनय या चेष्टाक्रियाभिनय होता है। अंग छह हैं - नेत्र, भ्रू, नासिका, अधर, चिबुक और कपोल। प्रत्यंग की संख्या भी छ: बतायी गई है, वे हैं- दोनों स्कन्ध, दोनों बाहु, पीठ, उदर, दोनों उरु और दोनों जंघा। कुछ आचार्य ग्रीवा को तो कुछ स्कन्ध को सातवाँ अंग मानते हैं। कुछ नाट्याचार्य दोनों मणिबन्ध, दोनों जानु और दोनों घुटने को अतिरिक्त प्रत्यंग मानते हैं तो कुछ आचार्य ग्रीवा को प्रत्यंग मानते हैं। आंगिक अभिनय के अन्तर्गत आने वाले अभिनय-भेदों के भेदोपभेदों का विवेचन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार प्राप्त होता है-

1. शिरोभिनय

शिर द्वारा किया जानेवाला अभिनय शिरोभिनय है। यह 13 प्रकार का होता है- आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, हिञ्चत, निहिञ्चत, परावृत, उत्क्षिप्त, अधोगत और लोलित।

2. हस्ताभिनय

पाठ्य के अनुकूल हाथ एवं उसकी अंगुलियों की विभिन्न मुद्राएँ बनाना हस्ताभिनय है। हस्ताभिनय को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है- असंयुक्त हस्ताभिनय, संयुक्तहस्ताभिनय एवं नृत्तहस्त। इनका क्रमश: उल्लेख इस प्रकार किया जाता है -

(i) असंयुक्त हस्ताभिनय का अर्थ है

एक हाथ से प्रदर्शित हस्त मुद्राएँ। ये संख्या में 24 हैं- पताक, त्रिपताक, कर्त्तरीमुख, अर्द्धचन्द्र, अराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर, कपित्थ, कटकामुख, सूच्यास्य, पप्रकोश, सर्पशीर्ष, मृगशीर्ष, कांगुल, अलपद्य, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष, संदंश, मुकुल, ऊर्जनाम और ताम्रचूड़।

(ii) संयुक्त हस्ताभिनय का अर्थ है

दोनों हाथों के संयोग से प्रदर्शित हस्त मुद्राएँ। ये संख्या में तेरह हैं- अञ्जलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटकावर्धमान, उत्संग, निषध, दोल, पुष्पपुट, मकर, गजदन्त, अवहित्थ तथा वर्धमान।

(iii) नृत्तहस्त

अभिनय में सौन्दर्य विधान के लिए संयुक्त एवं असंयुक्त हस्ताभिनयों के विविध रूपों के आधार पर विहित हस्त क्रिया को नृत्तहस्त कहा जाता है। नृत्तहस्त नृत्य के समय हाथों को चलाने एवं हस्त मुद्राओं के प्रयोग करने का ढंग है। नृत्तहस्त तीस हैं- चतुरङ्ग, उद्वृत्त, तलमुख, स्वस्ति, विप्रकीर्ण, अराल, कटकामुख, आविद्धवक्र, सूच्यास्य, रेचित, अर्धरेचित, उत्तानविञ्चत, पल्लव, नितम्ब, केशबन्ध, लता, करिहस्त, पक्षविञ्चत, पक्षप्रद्योतक, गरुड़पक्ष, दण्डपक्ष, ऊर्ध्वमण्डलिन्, पार्श्वमण्डलिन्, उरोमण्डली, उर:पार्श्वमण्डली, मुष्टिस्वस्तिक, नलिनीपद्मकोश, अलपल्लव, उल्वण, ललित और वलित।

3. कटिकर्म

कटि (कमर) का अभिनय कटिकर्म कहलाता है। यह पाँच प्रकार का होता है- छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता, और उद्वहिता।

4. उर: कर्म या वक्षकर्म

वक्ष की विविध मुद्राओं के द्वारा अभिनय वक्षकर्म है। वक्षकर्म पाँच हैं- आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित और सम।

5. पार्श्व कर्म

पार्श्वकर्म भी पाँच हैं- नत, समुन्नत, प्रसारित, विवर्त्तित और अपसृत।

6. पादाभिनय

पैरों से किया जाने वाला अभिनय पादाभिनय है। ये संख्या में पाँच हैं- उद्घट्टित, सम, अग्रतलसञ्चर, अञ्चित और कुञ्चित। अन्य आचार्य सूचीपाद की गणना भी पादाभिनय में करते हैं।

7. उदरकर्म

यहाँ तीन प्रकार के उदरकर्म का उल्लेख मिलता है, वे हैं- क्षाम, खल्ब और पूर्ण।

8. उरु कर्म

यहाँ पाँच प्रकार के उरु कर्म की चर्चा है- कम्पन, वलय, स्तम्भन, उद्वर्तन और निवर्त्तन।

टिप्पणी

9. जंघाकर्म

जंघाकर्म पाँच हैं- आवर्तित, नत्, क्षित्त, उद्वाहित और परिवृत्त।

10. मुखज कर्म

मुखज कर्म के छह प्रकार की चर्चा प्राप्त होती है, वे हैं, विधुत, विनिवृत्त, निर्भुग्न, भुग्न, विवृत्त और उद्वाही। तिरछा फैलाये हुए मुख को विधुत कहते हैं। खुला हुआ मुख विनिवृत्त कहलाता है। नीचे की ओर झुका हुआ मुख निर्भुग्न कहलाता है। थोड़ा फैला हुआ मुख भुग्न कहलाता है। ओठों के साथ खुला हुआ मुख विवृत्त कहलाता है तथा ऊपर की ओर उठा हुआ या खुला हुआ मुख उद्वाहि कहलाता है। मुखज कर्म के साथ ही मुख राग का वर्णन भी प्राप्त होता है। मुख राग से तात्पर्य है- नट के द्वारा अभिनेय वस्तु के भाव के अनुकूल मुख के रंग को बनाना। यहाँ रंग के लेपन के बिना ही मुख के राग को परिवर्तित किया जाता है। स्वाभाविक, प्रसन्न, रक्त और श्याम- ये मुख राग के चार भेद हैं।

11. नेत्र/दृष्टि अभिनय

मनुष्य के नयनों की भाषा और भाव भंगिमा में ही नाट्क की प्रतिष्ठा है। नेत्र की भाषा व भंगिमा अभिनय व प्रदर्शन का मुख्य हेतु है। यहाँ आठ रस दृष्टियों, आठ स्थायी भाव दृष्टि तथा बीस संचारी भाव दृष्टि की विवेचना प्राप्त होती है। आठ रस दृष्टियाँ हैं- कान्ता, भयानका, हास्या, करुणा, अद्‌भुता, रौद्री, वीरा और वीभत्सा। इन रस दृष्टियों के सम्यक् विनियोग से विविध रसों का सृजन होता है। स्थायी भावदृष्टि आठ हैं- स्निग्धा, दृष्टा, दीना, क्रुद्धा, दृप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता और विस्मिता। संचारी दृष्टियाँ बीस हैं- शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जान्विता, ग्लाना, शंकिता, विषादिनी, मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्वा, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रान्ता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता और मदिरा।

12. भ्रूकर्म

भ्रूकर्म सात हैं- उत्क्षेप, पातन, भ्रूकुटि, चतुर, कुंचित, रेचित और सहज। भौहों को बारी-बारी से उठाना उत्क्षेप, क्रमश: नीचे की ओर उतारना पातन, भौहें के मूलों का एक साथ समुन्नयन भृकुटी, भृकुटियों की मधुरता एवं विस्तार चतुर, भौहों को क्रमश: धीरे या एक साथ झुकाना कुञ्चित, ललित उत्क्षेप रेचित, स्वाभाविक स्थिति में रहना सहज है।

13. नासिका कर्म

नासिका के द्वारा किया गया अभिनय नासा कर्म है। इनके छ: प्रकार निम्नलिखित हैं- नता, मन्दा, विकृष्टा, सोच्छ्वासा, विकूणिता और स्वाभाविकी।

टिप्पणी

14. अधरकर्म

अधरोष्ठ के द्वारा किया गया अभिनय अधरकर्म या अधरोष्ठ कर्म कहलाता है। अधरोष्ठ कर्म छह हैं - विवर्तन, कम्पित, विसर्ग, विनिगूहन, संदष्टक, समुद्ग।

15. चिबुककर्म

ठुड्डी द्वारा किया गया अभिनय चिबुककर्म है। यद्यपि दन्त, जिह्वा और ओष्ठ के संचालन में चिबुककर्म होता है, किन्तु चिबुककर्म के लक्षण दन्तक्रिया के लक्षण हैं। चिबुक कर्म या दन्त कर्म सात हैं- कुट्टन, खण्डन, छिन्न, चुक्कित, लोहित, सम और दष्ट।

16. कपोल कर्म

कपोल कर्म को गण्ड कर्म भी कहते हैं, जो संख्या में छह हैं- क्षाम, फुल्ल, पूर्ण, कम्पित, कुंचित और सम।

आङिग्क अभिनय के विवेचन क्रम में चारी-विधान, गतिविधान, शयन और आसन की चर्चा भी प्राप्त होती है, जिनका संक्षिप्त विवेचन क्रमशः इस प्रकार है-

1. चारी विधान

पाद, जंघा, ऊरु और कटि आदि के द्वारा किये जाने वाले अभिनयों का सामानीकरण अर्थात् एक साथ चलने में जो चेष्टा होती है, उसे चारी कहा जाता है। जब चारी विधान से युक्त होकर अंगों को परस्पर सम्बद्ध करती है तो वह चारी-व्यायाम कहलाती है। यहाँ अभिनय के उत्तरोत्तर समन्वय की चर्चा करते हुए कहा गया है कि एक पैर से किया जाने वाला प्रचार चारी, दोनों पैरों के संचालन से होने वाला अभिनय करण, करण का समायोग खण्ड और तीन-चार खण्डों का योग मण्डल कहलाता है। चारी के द्वारा ही नृत्त प्रसृत होता है। चारी चेष्टाएँ चारी से ही व्याप्त है। शस्त्र मोक्षण चारियों द्वारा होता है और युद्ध में भी चारी का प्रयोग होता है। भरत का मानना है कि नाट्क में जो कुछ व्याप्त है वह सब चारियों में ही संस्थित है। चारियों के बिना नाट्क में कोई अंग सम्यक् रूप से प्रवृत्त नहीं होता है। भरत ने दो प्रकार के चारियों का उल्लेख किया है, वे हैं-

(i) भौमी चारी

मुख्यतः भूमि पर अभिनीत होने वाले। इसके सोलह भेद हैं - समपादा, स्थितावार्त्ता, शकटास्या, अध्यर्धिका, चाषगति, विच्यवा, एड़काक्रीडिता, बद्धा, ऊरुद्धृता, अड्डिता, उत्स्यन्दिता, जनिता, स्यन्दिता, अपस्यन्दिता, समोत्सरितमण्डली और मत्तल्ली।

टिप्पणी

(ii) आकाशिकी चारी

आकाश की ओर होने वाले इस अभिनय व्यापार के भी सोलह भेद हैं- अतिक्रान्ता, अपक्रान्ता, पार्श्वक्रान्ता, ऊर्ध्वजानु, सूची, नूपुरपादिका, दोलपादा, आक्षिप्ता, आविद्धा, उद्वत्ता, विद्युद्भ्रान्ता, अलाता, भुजङ्गत्रसिता, हरिणप्लुता, दण्डपादा और भ्रामरी।

इसी क्रम में आचार्य भरत कहते हैं कि नाटक के प्रयोक्ताओं को पैरों की गति के अनुसार हाथों को पैरों के अग्रगामी अथवा पृष्टगामी अथवा अनुगामी करना चाहिए। यहाँ कभी गति की प्रधानता होती है, कभी हस्त व्यापार की प्रधानता होती है तथा कभी दोनों की प्रधानता होती है। यहाँ स्थानक के द्वारा शस्त्र मोक्षण की चर्चा की गई है, वे हैं- वैष्णव स्थान, समपाद, वैशाख, मण्डल, आलीढ़ तथा प्रत्यालीढ़। साथ ही यहाँ शस्त्र मोक्षण की चार विधियों का उल्लेख प्राप्त होता है- भारत, सात्त्वत, वार्षगण्य और कौशिक।

गतिविधान के अन्तर्गत भरत ने पात्रें की गतियों की चर्चा की है। इसी तरह यहाँ आसनविधान और शयनविधान का विवरण भी उपलब्ध होता है। नाट्‌यप्रयोग की सफलता और समृद्धि की दृष्टि से ये भी महत्त्वपूर्ण हैं।

आंगिक अभिनय के अन्तर्गत पुत्तलिका कर्म, अवलोकन, पुटकर्म और ग्रीवा कर्म का भी उल्लेख हुआ है, जिसका विवरण क्रमशः इस प्रकार हैं-

1. पुत्तलिका कर्म

अभिनय काल में पुत्तलिका कर्म महत्त्वपूर्ण है। आँखों की पुतलियों के माध्यम से होने वाली विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति पुत्तलिका कर्म या तारा अभिनय है। पुत्तलिका कर्म या तारा कर्म के नौ प्रकार हैं- भ्रमण, वलन, पातन, चलन, प्रवेशन, विवर्त्तन, समुद्वृत्त, निष्क्राम और प्राकृत। कुछ आचार्यों ने इसे आत्मनिष्ठ ताराकर्म कहा है।

2. अवलोकन या दर्शन भेद

ये आठ हैं। कुछ आचार्य इसे विषयाभिमुख ताराकर्म कहते हैं। यहाँ इसके आठ भेदों की चर्चा है- सम, साची, अनुवृत्त, आलोकित, विलोकित, प्रलोकित, उल्लोकित और अवलोकित।

3. पुटकर्म

पुत्तलियों की गति का अनुसरण करने वाला पुटकर्म है। ये संख्या में नौ हैं - उन्मेष, निमेष, प्रसृत, कुञ्चित, सम, विवर्त्तित, स्फुरित, पिहित और विताड़ित।

4. ग्रीवाकर्म

ग्रीवा का अर्थ है गर्दन। ग्रीवा के माध्यम से किया गया अभिनय ग्रीवा कर्म है। ग्रीवा पर ही शिरों का सारा अभिनय आधारित होता है। इसलिए अभिनय में ग्रीवा का अत्यधिक महत्त्व है। ग्रीवा कर्म नौ हैं- समा, नता, उन्नता, यड्डा, रेचिता, कुञ्चिता, हिञ्चता, वलिता और विवृत्ता।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. कटिकर्म कितने प्रकार का होता है।
2. उदर कर्म कौन-कौन से है?
3. हस्ताभिनय किसे कहते हैं?
4. नासिका कर्म किसे कहते हैं?
5. मोमी चारी के कितने भेद हैं?

1.2 सामान्याभिनय

नाट्यशास्त्र में आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक इन चार अभिनय-प्रकारों के अतिरिक्त सामान्याभिनय की चर्चा भी प्राप्त होती है। सामान्याभिनय के अन्तर्गत भी उक्त चार प्रकारों का निरूपण मिलता है। विषय के अनुरूप यहाँ आंगिक अभिनय की दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है।

सम्पूर्ण अभिनयों में जो रूप अवशिष्ट है अर्थात् कवि और नट की शिक्षा के लिए जिसे पहले नहीं कहा गया है, वह सामान्य अभिनय है। सामान्य अभिनय, अभिनय का विषय होने के कारण अभिनयों में सामान्य है। हाव, भाव, हेला आदि सात्त्विक अभिनय, वाक्यादि छह प्रकार के आङ्गिक अभिनय और आलाप-प्रलापादि वाचिक अभिनय, जो पूर्व में अनुक्त रह गया था, सामान्याभिनय द्वारा उसका कथन किया जाता है। सामान्याभिनय के अन्तर्गत छह प्रकार के शारीराभिनय का विवेचन किया जाता है, वे हैं - वाक्य, सूचा, अंकुर, शाखा, नाटड्डायित और निवृत्यघड्डर। आचार्य भरत कहते हैं कि जहाँ पर शिर, हस्त, कटि, वक्ष, जंघा, उरु और करणों में समानरूप से कर्म विभाग प्रस्तुत किया जाता है, वह सामान्याभिनय है। यहाँ रस-भाव से युक्त नाट्य वेत्ताओं के द्वारा कोमल आंगिक चेष्टाओं और ललित हस्त संचारों के द्वारा अभिनय किया जाता है। इस क्रम में दो प्रकार के अभिनय की चर्चा प्राप्त होती है - (1) आभ्यन्तर और (2) बाह्य।

टिप्पणी

1. **आभ्यन्तराभिनय**

जो अभिनय अनुद्धत अर्थात् उद्धत स्वतंत्रता से रहित हो, सम्भ्रम अर्थात् घबराहट से रहित हो, अंगों की चेष्टाएँ जहाँ आबिद्ध न हो, लय, ताल, कला एवं संगीत की ध्वनियों के प्रमाण अपने रूप में नियत हो, पदों को गाये जाने योग्य पदों का और ध्रुवाओं का आलाप विभक्त हो, निष्ठुरता से रहित हो, जहाँ कोलाहल नहीं हो, ऐसा अभिनय आभ्यन्तर कहलाता है।

2. **बाह्याभिनय**

पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त नाटक विपर्यस्त हो अर्थात् उपर्युक्त विशेषणों से शून्य हो, स्वतंत्र आचरण वाले पात्रों की चेष्टाएँ स्वच्छन्द हो, गीत, वाद्य, ताल, लय आदि अपने नियम में बँधे हुए नहीं हो, ऐसा अभिनय कहलाता है।

उक्त प्रसंग में आचार्य भरत कहते हैं कि नाट्यचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों से युक्त तथा आभ्यन्तर लक्षणों से सम्पन्न वह अभिनय अभ्यन्तर अभिनय माना जाता है तथा आचार्यों के शासन से जो बाह्य होता है उसे बाह्य अभिनय कहा जाता है। यहाँ लक्षणों के द्वारा अभिनय एवं पात्रों की चेष्टागत क्रियाएँ लक्षित होती हैं। इसीलिए इस नाट्य में इन लक्षणों वाले अभिनय का सम्यक् प्रयोग किया जाता है। भरत कहते हैं कि जिन्होंने आचार्य की सेवा में निवास नहीं किया है। जो शासन से बहिष्कृत हैं, वे आचार्यों की क्रिया बिना जाने प्रयोग करते हैं। अतः वह बाह्य प्रयोग है।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. सामान्याभिनय कितने प्रकार का होता है?

....

2. आभ्यान्तर अभिनय का निरूपण कीजिए?

....

3. बाह्य अभिनय का निरूपण कीजिए?

....

आपने क्या सीखा

- आङ्गिक अभिनय- शरीरज, मुख और चेष्टाकृत भेद से तीन प्रकार का होता है।
- नाट्यशास्त्र में आङ्गिक अभिनय का विस्तार से वर्णन मिलता है।
- नाट्यशास्त्र में आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनयों के अलावा सामान्याभिनय की चर्चा भी प्राप्त होती है।
- सामान्याभिनय के दो भेद हैं- आभ्यांतर और बाह्य।

प्रायोगिक प्रश्न

1. आंगिक अभिनय के भेदों में से किसी एक अभिनय को आधार बनाकर शिक्षार्थी स्वयं अभिनय करके दिखाएं।
2. नेत्र अभिनय को सीखकर शिक्षार्थी किसी एक रस दृष्टि का अभिनय करके दिखाएं।
3. पुत्तलिका कर्म को ठीक से समझकर शिक्षार्थी पुत्तलिका कर्म के नौ प्रकारों में से किसी एक का अभिनय करके दिखाएं।
4. 13 प्रकार के शिरोभिनय में से किसी एक अभिनय का शिक्षार्थी अभिनय करके दिखाएं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. पांच प्रकार का।
2. क्षाम, खल्व और पूर्ण
3. पाठ्य के अनुरूप हाथ एवं अंगुलियों की विभिन्न मुद्राएं बनाना हस्ताभिनय है।
4. नासिका द्वारा किया गया अभिनय नासिका कर्म है।
5. सोलह

1.2

1. दो प्रकार का

2. अभ्यांतर अभिनय अनुद्धत, सम्भ्रम और अंगों की चेष्टाओं से आबद्ध नहीं होता है।

3. बाह्य अभिनय में स्वतंत्र आचरण वाले पात्रों की चेष्टाएं स्वच्छन्द होती है। गीत, वास, ताल, लय नियमों से बंधे नहीं होते हैं।

टिप्पणी

2

वाचिक अभिनय

प्रिय शिक्षार्थी पूर्व पाठ में हमने आंगिक अभिनय के विषय में जाना है। इस पाठ में हम वाचिक अभिनय के विषय पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

आचार्य भरत ने अभिनय के चार प्रकार बतलाएं हैं उनमें से वाचिक अभिनय प्रधान अभिनय है। इसी वाचिक अभिनय के माध्यम से रस और काव्य की दृष्टि भारतीय रंगमंच में प्रधान रही है। वाचिक अभिनय का सारा कार्य व्यापार अभिनेता के संवाद पर केन्द्रित होता है। अभिनेता के मुख से निकलने वाली ध्वनियों का संवादों में व्यवस्थित और रस अनुसार प्रयोग वाचिक अभिनय का मूल है।

एक कुशल अभिनेता अपने शरीर और अपनी आवाज को पूरी तरह साधकर ही एक चरित्र का निर्माण कर सकता है। शरीर तो दिखाई देता है किंतु आवाज दिखती नहीं अपितु सुनाई देती है। इसका कोई भौतिक आकार नहीं होता इसलिए वाचिक अभिनय एक अदृश्य शक्ति की भांति कल्पनाओं को जीवंत करने का महत्वपूर्ण साधन होता है। अभिनेता होने के लिए यह बहुत ही आवश्यक होता है कि उसे अपनी आवाज की ठीक और सही पहचान हो। यदि वह अपनी आवाज को जानता है, तभी वह उस पर नियंत्रण पा सकता है और विचारों को स्पष्ट तरीके से अभिव्यक्त कर सकता है। एक अभिनेता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने वाचन शैली से लोगों को अभिभूत कर दे। इसलिए अगर अभिनय में सफल होना है तो अभिनेता को वाचिक अभिनय के कौशल पर विशेष रूप से बल देना चाहिए। इस अध्याय में हम वाचिक अभिनय के उन्हीं तकनीकों की चर्चा करेंगे जिस का मुख्य आधार होगा आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र।

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- वाचिक अभिनय का सामान्य परिचय जानते हैं;
- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंगों के विषय में जानते हैं तथा तदनुरूप अभिनय कर पाते हैं और
- चित्राभिनय तथा सामान्याभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय के महत्व को जानते हैं तथा तदनुरूप अभिनय कर पाते हैं;

2.1 वाचिक अभिनय का सामान्य परिचय

नाट्यशास्त्र के अध्याय-15 से लेकर अध्याय-16 तक आचार्य भरत ने अभिनय के इस दूसरे प्रमुख भेद की चर्चा की है। उन्होंने इसे नाट्य का शरीर कहा है। वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता के द्वारा बोले जाने वाले संवादों व ध्वनियों से है। जैसा कि आप जानते ही हैं कि संस्कृत नाटकों को काव्य शैली में लिखा जाता था। उसके सभी संवाद भी पद्य शैली में होते थे। कविता को कंठस्थ करना भी थोड़ा आसान होता है। तीव्र भावों और अर्थ को गहराई प्रदान करने के लिए यह भी जरूरी है कि शब्दों के साथ स्वरों में परिवर्तन हो और उनके वाचन में एक लयात्मकता हो। इसलिए अभिनेता के लिए यह जरूरी है कि उसे स्वरों का ज्ञान हो। शब्दों के साथ सुर परिवर्तन और लय के प्रयोग की जानकारी भी उसे होनी चाहिए।

आप जानते हैं कि संस्कृत विद्वानों ने नाट्य को दृश्य काव्य की संज्ञा दी है यानि एक ऐसा काव्य जिसे देखा जा सके। एक कवि कल्पनाओं के बिम्ब को शब्द प्रदान करता है और अभिनेता उन शब्दों को कल्पना के स्तर तक ले जाते हैं। आचार्य भरत ने आंगिक अभिनय करने के बाद वाचिक अभिनय की विस्तृत चर्चा की है। वाचिक अभिनय की शुरुआत दृश्यकाव्य के ध्वनि रूप के विश्लेषण के साथ किया है। नाट्यशास्त्र के 15वें अध्याय में भरत ने वाचिक अभिनय की चर्चा शुरू की है। आचार्य भरत शब्दों पर विशेष प्रयत्न किये जाने का निर्देश देते हैं-

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यों नाट्यस्यैषा तनुः स्मुता।
अगनेपथ्यसत्वानि वाक्यार्थ व्यन्जयन्ति॥
(नाट्यशास्त्र-15/2)

अर्थात कवि द्वारा काव्य के निर्माण और अभिनेता के प्रयोग में शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि यहीं शब्द सारे नाट्य प्रदर्शन का कलेवर है और अंग, नेपथ्य रचना तथा सत्वाभिनय उसी शब्द के अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। अर्थात् आंगिक, आहार्य और सात्विक अभिनय रूप वाचिक अभिनय के ही सहायक हैं।

वे यह भी कहते हैं कि यदि वाचिक अभिनय शिथिल हो तो अन्य अभिनयों से नाट्यमंचन प्रभावी नहीं हो सकता। वाचिक अभिनय में वे शब्द को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह अत्यंत आवश्यक है कि अभिनेता को नाटक में प्रयुक्त भाषा के व्याकरण और शुद्ध उच्चारण का भली भाति ज्ञान हो ताकि वह वाक्य के अर्थ को ठीक तरीके से दर्शकों तक संप्रेषित कर सके। नाटक जिस भाषा में किया जाय, उसके अभिनेता को उस भाषा के व्याकरण का पूरी तरह ज्ञान होना चाहिए। यदि उसे इसका ज्ञान नही ंतो वह वाचिक अभिनय नहीं कर पायेगा।

2.2 वाचिक अभिनय और भाषा

उच्चारण के द्वारा ही हम भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी भाषा में शब्दोच्चार का बड़ा महत्व है। सामान्यत: यह देखा जाता है कि जो अभिनेता शुद्ध बोल नहीं पाते वे शुद्ध भाषा लिख भी नहीं पाते। पढ़े लिखे होकर भी बहुत सी ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर पाते क्योंकि वे घरेलू बोली के आदि होते हैं, जैसे- ष और श को स, य को ज, व को ब और क्ष को छ कहना।

अध्याय-18 में आचार्य भरत ने प्राकृत पाठ को केन्द्र में रखकर अभिनेता के लिए भाषा विधान की चर्चा की है। प्राकृत पाठ्य क्या है? जब संस्कृत पाठ संस्कारों के गुणों से हीन हो जाता है और परिवर्तित हो जाता है तो प्राकृत पाठ्य कहलाता है। नाट्य में प्रयोग होने वाले चार प्रकार की भाषा कही गई है-

1. अतिभाषा- देवगण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा
2. आर्यभाषा- राजा द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा
3. जातिभाषा-अनार्य तथा म्लेच्छों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा
4. जात्यन्तरी-गाँव तथा जंगल में रहने वाले पशुओं व पक्षियों द्वारा प्रयुक्त भाषा

नाट्य के विविध चरित्रों के लिए किन अवसरों पर संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग किया जाय, यह भी आचार्य भरत विस्तार से बताते हैं।

क्या यह संभव है कि एक संभ्रांत चरित्र निम्न वर्ग की भाषा में बात करे? हो सकता है कि आधुनिक रंगमंच में ऐसा कोई चरित्र हो परंतु नाट्यशास्त्र की शैलीगत संरचना चरित्र के अनुरूप भाषा (भाषिक अभिव्यक्ति का तरीका) के प्रयोग का समर्थन करती है। उदाहरण के लिए भरत संस्कृत पाठ्य का प्रयोग धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशांत नायकों के लिए प्रयोग किये जाने की बात कही है। इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर नायकों के लिए प्राकृत पाठ के प्रयोग का भी उन्होंने निर्देश दिया। आचार्य भरत नाटक के अन्य पात्रों के लिए भी भाषा का विधान करते हैं। जैसे- जो पात्र जैन साधु, साधु, भिक्षु हों उन्हें प्राकृत पाठ का

प्रयोग करना चाहिए। स्थिति आने पर महरानी या शिल्पकारी जैसे स्त्री पात्र भी संस्कृत भाषा का व्यवहार कर सकते हैं। अप्सराओं के लिए संवाद संस्कृत में होने चाहिए किंतु जब वे पृथ्वी पर विचरण करें तो स्वाभाविक रूप से प्राकृत पाठ रखना चाहिए।

भरत नाटक में पाठ्य के दो प्रकार- संस्कृत और प्राकृत की चर्चा करते हैं। संभव है जब नाट्यशास्त्र लिखा गया होगा तब संस्कृत और प्राकृत का प्रचलन रहा होगा। आचार्य भरत ने 'अ' से 'औ' तक चौदह स्वर तथा 'क' से 'ह' तक व्यंजन वर्ण के उच्चारण स्थलों के विषय में बतलाया है।

स्वर

स्वर ध्वनियाँ हैं जो बिना मॉडुलेशन के उत्पादित होती हैं। भरत मुनि ने वाचिक अभिनय के आरंभ में चौदह स्वर बताए हैं, वे प्राय: ह्रस्व और दीर्घ होते हैं। वास्तव में ह्रस्व वे स्वर हैं जिनके उत्पादन में श्वास का एक छोटा हिस्सा खर्च होता है और दीर्घ में ज्यादा। अ, इ, उ और ए-ह्रस्व हैं और आ, ई, ऊ और ऐ-दीर्घ। वाचिक अभिनय के आरंभ में स्वरों का ऐसा वर्गीकरण क्यों? संभवत: भरत स्वरों को संवाद की सबसे छोटी इकाई मानते हैं और स्पष्ट उच्चारण के लिए स्वरों की बनावट और उसके उच्चारण को समझना आवश्यक मानते हैं।

व्यंजन

व्यंजन वे वर्ण हैं जिनका उच्चारण बिना स्वरों के नहीं होता। व्यंजन का उच्चारण किस प्रकार किया जाय? इसका निदान भी आचार्य भरत बतलाते हैं। प्रत्येक वर्ण को उन्होंने घोष और अघोष में विभक्त कर उनके उच्चारण स्थलों के बारे में बताया है-

क, ख, ग, घ, ङ, अ, ह वर्णों का उच्चारण कण्ठ स्थान से होता है।

च, छ, ज, झ, य, श का तालव्य।

ट, ठ, ड, ढ, ण, ऋ, र और ष का मूर्धन्य।

त, थ, द, ध, न, लृ, ल और स का दन्त्य

प, फ, ब, भ, म को ओष्ठ्य स्थान से उच्चरित बताया है।

वर्णों के सार्थक समूह ही मिलकर शब्द का निर्माण करते हैं और शब्दों का सार्थक समूह वाक्यों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संवादों के वाचन की दूसरी इकाई- व्यंजन के उच्चारण की रीतियों के बारे में वे विस्तार से चर्चा करते हैं। आज भी अभिनेता अपने 'उच्चारण अभ्यास' में स्वर और व्यंजन को सही तरीके से उच्चारित करने का ही प्रयास करते रहते हैं।

टिप्पणी

शब्द

भरत ने स्वर तथा व्यंजन के योग से तथा स्वर, संधि, विभक्ति, संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग, निपात, तद्धित समास तथा नाम धातु के विषय में बतलाया है। उनका यह उल्लेख शब्द में निहित अर्थ को जानने के उद्देश्य से है। यदि अभिनेता शब्दों के अर्थ को नही जानेंगा तो वह कैसे उस शब्द ध्वनि का उच्चारण कर सकेगा।

पद्य

यह तो तय है कि नाट्यशास्त्र पद्य संवादों की तरफ संकेत करता है। इसीलिए भरत पद्य रचना के संबंध में बताते हैं। शब्द के स्वरूप पर चर्चा के बाद भरत शब्दों के समूह से बनने वाली पद्य रचना- छंद के विषय में बतलाते हैं और उनके विभेदों की चर्चा करते हैं। अध्याय सोलह वृत्तविधान में भरत छंदों का नाट्य प्रयोग में तरीका बतलाते हैं और अध्याय-सत्रह में छंद से बनने वाले वृत्त लक्षणों से युक्त काव्य-अलंकार विधान का उल्लेख करते हुए वे काव्य में निहित छत्तीस लक्षण का बताते हैं। ये छत्तीस लक्षण संवाद के व्यवहार को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जैसे- भूषण (जब काव्य रचना गुणों और अलंकारों इस प्रकार सजी हो जैसे किसी व्यक्ति के शरीर को सजाया गया हो।), अक्षरसंघात (जब किसी स्लिष्ट अक्षरों से विचित्र अर्थ की अभिव्यक्ति की जाय), शोभा (जब किसी नए और चाहे गये अर्थ को सिद्ध किया जाय अथवा अज्ञात विषय को सिद्ध रूप में बताया जाय), उदाहरण (जब दो समान वाक्यों से किसी एक अर्थ को प्रकट किया जाय), हेतु (जब छोटे वाक्यों का चतुराई से प्रयोग कर चाही गई वस्तु को पा लिया जाय), संशय (जब विचार की अधिकता होने के कारण पूरे अर्थ को जाने बिना ही वाक्य समाप्त हो जाय), दृष्टांत (जब हेतु या फिर उदाहरण देते हुए किसी विषय का मनोरंजक तरीके से समर्थन किया जाय) इत्यादि। पद्यात्मक संवादों के लक्षणों की जानकारी अभिनेता के लिए आवश्यक है। तभी वह संवादों में निहित अर्थ को प्रकट कर पाएगा।

आज के परिवेश में यदि हम वाचिक के संदर्भ में भरत के निर्देशों को देखें तो गद्य और पद्य दोनों ही हमें नाटकों में दिखाई देते है। ऐसे में यदि गद्य हो तो अभिनेता को गद्य विधान के संदर्भ में जानकारी होनी चाहिए। वाक्य संरचना और उसमें निहित अर्थ को उद्घाटित करने का प्रयास अभिनेता को करना चाहिए।

अलंकार

पद्य में अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। अलंकार अर्थात बात को कहने का आडम्बरयुक्त तरीका। नाट्यशास्त्र के नाट्यधर्मी अभिनय शैलीगत है जिसे हम 'स्टाइलाइज फॉर्म' कह सकते हैं। ऐसे में संवाद कैसे सरल हो सकते हैं। संवादों की अदायगी में शैलीगत व्यवहार के लिए काव्य-अलंकारों की विशिष्ट भूमिका है। आचार्य भरत ने इनकी संख्या चार बताई है-

टिप्पणी

1. उपमा

उपमा अलंकार में दो पदार्थों के गुणों अथवा प्रकृति की दिखाई देने वाले वस्तु से तुलना की जाती है। जैसे- आपका मुख चंद्र के समान है।

2. रूपक

रूपक अलंकार वह है जिसमें एक वाक्य में अलग-अलग विषयों वाले शब्दों को जोड़ा जाय। जैसे- वहां हंसी से सरोवर, पुष्पों से वृक्ष, मत्त भंवरों से कमल तथा गोष्ठियों से उपवन सदा शोभायुक्त रहते हैं।

3. दीपक

जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थ के एक ही धर्म का वर्णन किया जाय।

4. यमक

जहाँ शब्दों की बार-बार आवृत्ति हो किंतु हर बार उसका अर्थ भिन्न हो।

इसी प्रकार यमक अलंकार- श्लेष- जिसमें कई अर्थ एक ही पद से जुड़े हों। यह अलंकार केवल पद्य रचना में ही नहीं प्रयुक्त होते बल्कि वाचन शैली का भी निर्धारण करते हैं।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. वाचिक अभिनय से आप क्या समझते हैं?

....

2. भाषा पर कैसे अधिकार पाया जा सकता हैं?

....

3. नाट्यशास्त्र में भाशा की चर्चा किस अध्याय में हैं?

....

4. भरत के अनुसार नाट्य में प्रयुक्त होने वाली चार भाषाएं कौन-सी हैं?

....

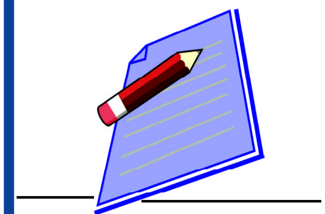

टिप्पणी

5. भरत के अनुसार पाठ्य के कितने प्रकार हैं?

....

6. स्वर क्या है?

....

7. व्यंजन से क्या तात्पर्य है?

....

8. शब्द क्या है?

....

9. आचार्य भरत छंदों की चर्चा किस अध्याय में करते हैं?

....

10. अलंकार का क्या आशय है?

....

2.2 षडांग परिचयः पाठ्य के गुण

जब अभिनेता वाचन की प्रक्रिया से गुजरता है तो उसके संवादों में कुछ विशिष्ट गुण होते हैं जो दर्शकों उसके संवादों की ओर आकर्षित करते हैं। वे क्या गुण है? इसकी चर्चा आचार्य भरत पाठ्य के गुण एवं स्वरूप के अंतर्गत करते हैं। उन्होंने इनकी संख्या छः मानी है–

(1) स्वर, (2) स्थान, (3) वर्ण, (4) काकु, (5) अलंकार तथा (6) अंग। वाचिक अभिनय में कुशलता प्राप्त करने के लिए इन छः तत्वों को अभिनेता निरंतर प्रशिक्षण से गुजरकर साध सकता है।

1. **स्वरः** पाठ्य का स्वर अथवा अभिनेता का वाचिक अभिनय इन्हीं छः अलंकारों के अधीन होता है। इन उपकरणों के प्रयोग नाटकीय संवाद अधिक प्रभावी और संप्रेषणीय हो जाता है। स्वरों की संख्या सात है–

    1. षडज (सा)

    2. ऋषभ (रे)

3. गान्धार (ग)

4. मध्यम (म)

5. पंचम (प)

6. धैवत (ध)

7. निषाद (नि)।

इन स्वरों का प्रयोग रस के अनुसार और अनुकूल परिस्थिति में करना चाहिए। क्रमशः श्रृंगार और हास्य में मध्यम तथा पंचम, करुण में गांधार और निषाद, भयाानक तथा वीभत्स में धैवत का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. **स्थान:** आचार्य भरत नें स्वरों की उत्पत्ति स्थल के बारे में विस्तार से चर्चा की है। अभिनेता द्वारा इन स्वरों के उच्चारण हेतु उचित स्वर स्थलों के बारे में अवश्य ज्ञान होना चाहिए। उन्होंने स्वरों के तीन स्थान बतलाए हैं-

1. उरस्थल

2. कण्ठ

3. शीर्ष (मस्तक)

इन स्थलों के प्रयोग को हम कुछ इस प्रकार भी समझ सकते हैं। जब अभिनेता बहुत दूर स्थित किसी व्यक्ति को पुकार रहा होता है या फिर वार्तालाप कर रहा होता है तब स्वर का उच्चारित स्थान मस्तक होता है। जब वह थोड़ी दूर पर खड़े व्यक्ति से संवाद करता है तब स्वरों का उत्पत्ति स्थल कण्ठ होता है और जब बिल्कुल समीप खड़े व्यक्ति से संवाद करता है तो स्थल उर (छाती) से स्वर उच्चारित होने चाहिए या होते हैं।

वर्ण

उच्चारित किये जाने वाले पाठ में चार वर्ण (स्वभाव) होते हैं- (1) उदात्त, (2) अनुदात्त, (3) स्वरित तथा (4) कम्पित। वर्ण से तात्पर्य भाषा के सुर गुण अथवा गीतात्मक स्वराघात से है। हास्य और श्रृंगार में स्वरित और उदात्त वर्ण, वीर, रौद्र और अद्‌भुत रस में उदात्त तथा कंपित, करुण, वात्सल्य और भयानक में अनुदात्त, स्वरित और कंपित स्वर होना चाहिए। तात्पर्य भावों से है। इसके लिए मुख्य रूप से किये जाने वाले अभ्यासों में अभिनेता को अलग-अलग अभिव्यक्ति के साथ बोलने को कहा जा सकता है।

टिप्पणी

काकु

पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है। इसके दो भेद हैं- (1) साकांक्ष और (2) निराकांक्ष। यदि किसी वाक्य के उच्चारण के समय उसका अर्थ पूर्ण रूप से प्रकट नही होता तथा कंठ और वक्ष स्थल से स्वर उत्पन्न होता हो, जो तार स्वर से प्रारंभ होकर मंद्र स्वर में समाप्त हो जाता हो, उन्हें साकांक्ष काकु कहते हैं। इनमें वर्ण तथा अलंकार अपूर्ण होते हैं। निरांकाक्ष वे कहलाते हैं जिनमें किसी वाक्य के उच्चारण में पूर्ण अर्थ प्रकट होता है तथा मंद्र से तार तक स्वरों की योजना रहती हैं। इनमें वर्ण और अलंकार पूर्ण रूपेण विद्यमान रहते हैं। इसका संबंध मुख्यत: स्वरों के उतार-चढ़ाव अर्थात वोकल टोन से है।

अलंकार

आचार्य भरत ने पाठ्य के छ: अलंकार माने हैं। वे इस प्रकार हैं-(1) उच्च, (2) दीप्त, (3) मन्द्र, (4) नीच, (5) द्रुत और (6) विलम्बित। वे इनके अनुप्रयोग का निर्देश देते हुए कहते हैं कि विभिन्न रसों और भावों के अनुरूप ही काकु स्वर को उच्च, दीप्त तथा द्रुत रखना चाहिए। आइये अब हम इनके बारे में जानते हैं-

1. **उच्च**- यह स्वर मूर्धन्य स्थान से उत्पन्न होता है और 'तार स्वर' से भी उच्च स्वर में होता है। किसी दूर खड़े व्यक्ति से संभाषण करने, परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर, किसी दूर खड़े व्यक्ति को बुलाने, त्रास और बाधा में वाचिक अभिनय में 'उच्च' अलंकार होना चाहिए।

2. **दीप्त**- दीप्त स्वर उसे कहते हैं जो मूर्धा से उत्पन्न हो और कुछ अधिक ऊँची आवाज से उच्चारित किया जाय। इस अलंकार का प्रयोग अक्सर आक्षेप, युद्ध, झगड़े, विवाद, जोर से खींचने, क्रोध, शौर्य, अहंकार, तेज या फिर रूखे उत्तर देने, डाँटने और रोने के अभिनय में प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

3. **मन्द्र**- यह स्वर वक्ष स्थल से उत्पन्न होता है। इसकी योजना अक्सर ग्लानि, शंका, चिंता, दीनता, बीमारी, शस्त्रों से गहरे घाव, मूर्च्छा या फिर गूढ अर्थ वाले शब्दों को कहने में किया जाता है।

4. **नीच**- यह भी वक्षस्थल से उत्पन्न होता है और अत्यंत मंद्र स्वर होता है। इसका प्रयोग अक्सर स्वाभाविक संभाशण, व्याधि, थकान, त्रस्त, व्यक्ति के गिरने और मूर्च्छित होने की अवस्था में किया जाता है।

5. **द्रुत**- यह स्वर कंठ से उत्पन्न होता है। इसकी योजना स्त्रियों के द्वारा बालकों को सांत्वना देने या चुप करने तथा प्रिय के प्रस्ताव को अस्वीकृत करने में, भय, "ीत, ज्वर, आवेग, गुप्त और आवष्यक कार्य को बतलाने में किया जाना चाहिए।

6. **विलम्बित**- विलम्बित स्वर कण्ठ स्थान से उच्चारित होता है और थोड़ा मंद्र स्वरूप वाला होता है। इस अलंकार का प्रयोग प्राय: श्रृंगार, वितर्क, विचार, अटपटी बात कहने, लज्जा, चिंता, आष्चर्य, दोश की बात कहने या निन्दा करने आदि में करना चाहिए।

अंग

अंत में उच्चारण के छ: अंगों की चर्चा मिलती है- (1) विच्छेद, (2) अर्पण, (3) विसर्ग, (4) अनुबंध, (5) दीपन तथा (6) प्रशमन। विराम के कारण विच्छेद, लीला या सौकुमार्य से पूर्ण शब्दावली का पाठ 'अर्पण', वाक्य को पूर्ण करना 'विसर्ग', दो या दो से अधिक पदों के मध्य विच्छेद न करना तथा बिना साँस टूटे कहते जाना 'अनुबंध', जो स्वर तीनों स्थानों से उच्चारित होकर बढ़ता जाए वह 'दीपन' तथा ऊँचे चढ़े हुए स्वरों को धीरे-धीरे नीचे की ओर बिना परिवर्तन के लाना 'प्रशमन' कहलाता है। पाठ्य के इन अलंकारों के प्रयोग से वाचन में विशिष्ट प्रभाव और रमणीयता का उदय होता है। इसके लिए आज अभिनेताओं को सुधारात्मक (इम्प्रोवाइजेशन) प्रक्रिया से गुजारकर इन छ: अंगों से परिचित कराया जाता है।

आचार्य भरत विराम के भी विषय में चर्चा की है। वे कहते है कि यह अर्थ के समाप्त होने या फिर परिस्थिति पर निर्भर करता है। ये विराम अर्थों को स्पष्ट करते हैं। वाचिक अभिनय में 'विराम' पर नाट्य निर्देशकों को सदैव ध्यान देना चाहिए क्योंकि अभिनय उच्चारित शब्दों के अर्थ पर निर्भर करता है। इसके लिए वे अलंकारों के साथ हाथों की हलचल भी निर्धारित करते हैं। जैसे- रौद्र और वीर रस में हाथ शस्त्र चलाने में लगे रहते हैं। वीभत्स रस में कोई घृणित वस्तु को देखकर हाथ सिकुडे रहते हैं। ऐसी स्थिति में अलंकार और विराम से ही अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है।

पद्य अर्थात टेक्स्ट में जो विराम रखे जाते हैं वे अर्थ के समाप्त होने पर या फिर सांस लेने के लिए रखे जाते हैं। इसलिए अभिनेता को चाहिए कि वो उचित जगह पर विराम लेकर सांस को ले। आवश्यकतानुसार पद्य में रस और भावों के लिए एक से अधिक विराम भी रखे जा सकते हैं। रंगमंच पर अर्थ प्रकट करने के लिए चतुर अभिनेता क्रम में परिवर्तन कर विराम ले सकते हैं।

अभिनेता जिस पाठ का वाचन कर रहा है वह अशुद्ध शब्दों और लक्षणों से युक्त नहीं होना चाहिए। निश्चित विराम के अतिरिक्त अन्य जगह पर देर तक रूकना और दीन हीन अवस्था में तेज बोलना अर्थ के विपरीत है। नाट्य प्रयोक्ता या फिर निर्देशकों को पाठ्य संवादों को उचित तरीके से स्वर, कला, ताल और लय से युक्त रखनी चाहिए-ऐसा आचार्य भरत कहते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 2.2

1. पाठ्य के गुण कौन-कौन से हैं?

   ....

2. स्वरों की संख्या कितनी है?

   ....

3. स्वर उत्पत्ति के स्थान कौन-कौन से हैं?

   ....

4. भरत के अनुसार पाठ में कौन-कौन से वर्ण होते हैं?

   ....

5. काकु से क्या तात्पर्य है?

   ....

6. काकु भेद क्या है?

   ....

7. उच्चारण के कौन-कौन से अंग हैं?

   ....

2.3 चित्राभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय

आचार्य भरत ने चित्राभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनय का उल्लेख किया है जिसके अंतर्गत वे आकाश भाषित, स्वगत, अपवारित तथा जनान्तिक की चर्चा करते हैं। किसी पात्र से किया जाने वाला संभाषण जो दूरी से हो या किसी पात्र के बिना प्रवेश के हो अथवा परोक्ष रूप में किसी को संबोधित करते हुए कहा गया हो और जो समीप न हो 'आकाश भाषित' कहलाता है। वह वचन जो स्वयं से कहा जाय 'स्वगत' तथा जो वचन हृदय में गुप्त रखते हुए कहे जाते हों वे 'आत्मगत' एवं किसी गोपनीय भाव से सम्बद्ध वचनों का संभाषण 'अपवारित' कहलाता है। इसी प्रकार जब अनपेक्षित रूप में समीप स्थित व्यक्ति को कोई बात नही सुनाना हो तो उस दशा में किसी अन्य व्यक्ति से किया जाने वाला संभाषण 'जनान्तिक' कहलाता है।

इसके आगे वे इनके प्रयोग की विधि बतलाते हैं। आचार्य भरत का कहना है कि जो शब्द हड़बड़ाहट, उत्पात, रोष तथा शेकावेग में कहे जाते हैं उन्हें 'पुनरुक्त' कहते हैं। इन दशाओं मे कहे गए शब्द दो या तीन बार दुहराए जाने चाहिए। नाटक में यदि कोई शब्द विकृत अथवा अपूर्ण है तो उन्हें लक्षण के अनुसार आंगिक मुद्राओं तथा चेष्टाओं के द्वारा नही अभिनीत करना चाहिए। स्वप्न की अवस्था में अंगों या हाथों की चेष्टाएं न करके केवल निद्रावस्था में कहे गए वाक्यों द्वारा ही प्रदर्शित करना चाहिए। इस दशा में वाक्यों को मन्द ध्वनि में व्यक्त-अव्यक्त पुनरुक्त वचनों मे पिछली घटना का स्मरण करना चाहिए। वृद्ध व्यक्ति के संभाषण में गद्‌गद् ध्वनि तथा स्खलित अक्षरों की योजना करनी चाहिए। बच्चों के संवादों मे कलकल ध्वनि तथा अपूर्ण शब्द रखे जाने चाहिए। मरण के समय अव्यक्त संवादों की योजना करनी चाहिए जो कि शिथिल, भारी तथा हीन वर्णों वाले हों, गले मे खड़खड़ाहट, बीच-बीच मे हिचकी, श्वासवेग आदि का प्रयोग होना चाहिए।

2.4 सामान्य अभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय

सामान्य अभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनय के भाव तथा रस से युक्त बारह मार्ग बतलाए गए हैं जिन्हें नाटकीय कथावस्तु में संवाद हेतु इस्तेमाल किया जाता है। ये हैं-

1. आलाप (किसी से बोलना)
2. प्रलाप (असंबद्ध तथा निरर्थक वाक्यावलि का प्रयोग)
3. विलाप (शोकपूर्ण अवस्था में उत्पन्न वचनावलि)
4. अनुलाप (एक ही बात को बार-बार दुहराना)
5. संल्लाप (उक्ति-प्रत्युक्ति युक्त संभाषण)
6. अपलाप (पूर्व कथित शब्दावली की अन्य अर्थ में योजना)
7. संदेश (उसे यह कह देना-ऐसे वाक्य)
8. अतिदेश (जो तुमने कहा वह मैने ही कहा-इस भावना से सहमतिसूचक वाक्य)
9. निर्देश (यह मैं कहता हूँ-ऐसे वाक्य)
10. व्यपदेश (किसी बहाने से कही जाने वाली बात)
11. उपदेश (यह ऐसा करो तथा इसे ले लो-ऐसे वाक्य) एवं
12. अपदेश (दूसरे के वचन बतलाकर अपनी बात को कह देना)।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय के अंतर्गत आचार्य भरत द्वारा बताए गए निर्देश एक अभिनेता के लिए बड़े ही आवश्यक हैं। भले ही वह निर्देश पद्य रचना को केन्द्र में रखकर दिये गए हैं किंतु कई तत्व सभी शैलियों में समान रूप से दिखाई देते हैं। शब्द की प्रतिष्ठा, स्वराघात, वाचन की लय, विराम, अदायगी का तरीका, स्वर, लाउडनेस, प्रोजेक्शन, वोकल टोन, जैसे आधुनिक प्रशिक्षण प्रणाली के शब्द भरत के वाचिक अभिनय के वर्णन में समाए हुए हैं। आज नाट्यशास्त्र को 'स्पीच एंड वायस' के प्रशिक्षण में आधुनिक दृष्टि के साथ देखा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 2.3

1. आकाश भाषित क्या है?

   ....

2. स्वगत से क्या अभिप्राय है?

   ....

3. अपवारित से क्या तात्पर्य है?

   ....

4. जनान्तिक क्या है?

   ....

5. भाव तथा रस से युक्त वाचिक अभिनय के कितने मार्ग हैं?

   ....

आपने क्या सीखा

- आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार भेदों के अंतर्गत वाचिक अभिनय की चर्चा की है।
- नाट्यशास्त्र के 15वें अध्याय में भरत ने वाचिक अभिनय की चर्चा शुरु की है।
- वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता द्वारा बोले जाने वाले संवादों से है।

- वाचिक अभिनय में वे शब्द को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह अत्यंत आवश्यक है कि अभिनेता को नाटक में प्रयुक्त भाषा के व्याकरण और शुद्ध उच्चारण का भली भाति ज्ञान हो ताकि वह वाक्य के अर्थ को ठीक तरीके से दर्शकों तक संप्रेषित कर सके।

- नाट्य में प्रयोग होने वाले चार प्रकार की भाषा- अतिभाषा (देवगण द्वारा प्रयुक्त), आर्यभाषा (भूपालों द्वारा प्रयुक्त), जातिभाषा (अनार्य तथा म्लेच्छों द्वारा प्रयुक्त) और जात्यन्तरी (ग्राम में तथा जंगल में रहने वाले पशुओं व पक्षियों द्वारा प्रयुक्त) बतायी है। नाट्य के विविध चरित्रों के लिए किन अवसरों पर संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग किया जाय, यह भी आचार्य भरत विस्तार से बताते हैं।

- पाठ्य के गुण एवं स्वरूप की संख्या छः है- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंग।

- पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है।

- आचार्य भरत ने चित्राभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनय का उल्लेख किया है जिसके अंतर्गत वे आकाशभाषित, स्वगत, अपवारित तथा जनान्तिक की चर्चा करते हैं।

प्रायोगिक प्रश्न

1. वाचिक अभिनय में भाषा का क्या महत्व है? आचार्य भारत के अनुसार अगर आप एक संभ्रांत चरित्र का अभिनय कर रहे हैं तो किस भाषा में अभिनय करेंगे?

2. स्वरों का अभिनय में क्या महत्व है?

3. काकु पाठ्य का प्राणतत्व क्यों है? साकांक्ष काकु का वाचिक अभिनय करने का प्रयास कीजिए।

4. चित्राभिनय के संदर्भ में वाचिक अभिनय की क्या भूमिका है? आचार्य भारत के अनुसार 'आकाश भाषित' का अभिनय कीजिए।

5. पाठ में बताए अनुसार शिक्षार्थी 'अनुलाप' का अभिनय करके दिखाएं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता द्वारा बोले जाने वाले संवादों व ध्वनियों से है।
2. उच्चारण के सही तरीके के ज्ञान से भाषा पर अधिकार पाया जा सकता है।
3. अध्याय 18 में आचार्य भरत ने भाषा विधान की चर्चा की है।
4. अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा, जात्यन्तरी
5. दो प्रकार- संस्कृत और प्राकृत
6. स्वर वे ध्वनियाँ हैं जो बिना मॉडुलेशन के उत्पादित होते हैं।
7. व्यंजन वे वर्ण हैं जिनका उच्चारण बिना स्वरों के नहीं हो सकता।
8. भरत ने स्वर तथा व्यंजन के योग से तथा स्वर, संधि, विभक्ति, संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग, निपात, तद्धित समास तथा नाम धातु के प्रयोग से शब्द का निर्माण बतलाया है।
9. अध्याय-16 वृत्तविधान में भरत ने छंदों के प्रयोग की चर्चा की है।
10. अलंकार का तात्पर्य बात को कहने के आडंबरयुक्त तरीके से है।

2.2

1. स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार और अंग।
2. स्वरों की संख्या सात है- षडज्, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद।
3. स्वरों के तीन स्थान हैं- उरस्थल, कण्ठ तथा शीर्ष (मस्तक)।
4. पाठ में चार वर्ण होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित। वर्ण से आशय भाषा के सुर गुण अथवा गीतात्मक स्वराघात से है।
5. पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है।

6. काकु के दो भेद हैं- साकांक्ष और निराकांक्ष।

7. उच्चारण के छः अंगों की चर्चा मिलती है-विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबंध, दीपन तथा प्रशमन।

2.3

1. किसी पात्र से किया जाने वाला संभाषण जो दूरी से हो या किसी पात्र के बिना प्रवेश के हो अथवा परोक्ष रूप में किसी को संबोधित करते हुए कहा गया हो जो समीप न हो 'आकाश भाषित' कहलाता है।

2. वह वचन जो स्वयं से कहा जाय।

3. किसी गोपनीय भाव से सम्बद्ध वचनों का संभाषण 'अपवारित' कहलाता है।

4. जब अनपेक्षित रूप में समीप स्थित व्यक्ति को कोई बात नही सुनाना हो तो उस दशा में किसी अन्य व्यक्ति से किया जाने वाला संभाषण 'जनान्तिक' कहलाता है।

5. आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, संल्लाप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, निर्देश, व्यपदेश, उपदेश एवं अपदेश।

3

आहार्य अभिनय

भारतीय अभिनय परंपरा में अभिनय को 'स्वभाव' छोड़कर 'परभाव' ग्रहण करना कहा गया है और वास्तव में यह प्रक्रिया आहार अभिनय से ही पूरी होती है क्योंकि जब हम किसी नाटक में चरित्र की भूमिका निभाते हैं तो हम केवल अपने आंगिक क्रियाकलापों और वाणी को ही नहीं, बल्कि उस चरित्र के अनुसार वेशभूषा रूप सज्जा सामग्री का भी प्रयोग अभिनय के दौरान करते हैं। इसी के साथ हम चरित्र को समग्र रूप से अपने ऊपर आरोपित करते हैं। इस अध्याय में हम आहार्य अभिनय पर चर्चा करेंगे और विस्तार से जानेंगे कि हमारे नाट्य शास्त्र में अभिनय के चार भेदों में प्रमुख आहार्य अभिनय की क्या विधियाँ आचार्य भरत ने बतलाई हैं।

आज भी हम नाटकों की प्रस्तुति के लिए 'नेपथ्य कर्म' पर प्रमुख बल देते हैं। कॉस्ट्यूम, सेट, प्रॉप्स, मेकअप जैसे शब्द अब रंगमंच पर सामान्य है। किंतु हमारी भारतीय नाट्य परंपरा में नेपथ्य कर्म को भी एक अभिनय का रूप माना है। यदि ध्यान से हम नाट्यशास्त्र में वर्णित 'आहार्य अभिनय' को देखें तो यह बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर हम आहार्य अभिनय पर चर्चा करेंगे।

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- आहार्य अभिनय के विषय में जानते हैं;
- आहार्य अभिनय की प्रमुख विधियों को जानते हैं;
- पुस्त रचना के विषय में जानते हैं और पुस्त रचना का निर्माण कर पाते हैं;

- अलंकरण की विधियों को जानते हैं तथा उनका निर्माण कर पाते हैं;
- अंग रचना के विषय में जानते हैं तथा संयुक्त वर्णों का प्रयोग कर पाते हैं;
- संजीव के विषय में जानते हैं संजीव का निर्माण कर पाते हैं; और
- नाट्य में आहार्य अभिनय की उपयोगिता समझते हैं।

3.1 आहार्य अभिनय का सामान्य परिचय

आहार्य अभिनय का तात्पर्य अभिनय की उस विधि से है जिसमें अभिनेता नाट्य मंचन के लिए नेपथ्य में तैयारी करता है। नाट्यशास्त्र में आंगिक और वाचिक अभिनय के उपरांत आहार्य अभिनय की चर्चा की है। नाट्यशास्त्र में नाटक की सफलता के लिए आहार्य अभिनय की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। आहार्य अभिनय को नेपथ्य कर्म भी कहा है।

नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की विस्तार पूर्वक चर्चा की गई है। इस अभिनय में मुख्यत: वेशभूषा और सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्राय: नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है। वे इसे नेपथ्य विधान भी कहते हैं और इस बात पर भी विशेष रूप से बल देते हैं कि अगर नाटक के प्रयोग में सफलता चाहिए तो आहार्य अभिनय पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। जैसा कि हम जानते हैं कि नाटक में अलग-अलग अवस्था और अलग-अलग प्रकृति के अभिनेता होते हैं और वे स्वयं से भिन्न चरित्र की भूमिका निभाने का प्रयास करते हैं। ऐसे में आहार्य अभिनय के द्वारा वे अपने शारीरिक क्रियाकलापों और वाणी से चरित्र के भावों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। साथ ही वे चरित्र का रूप धारण कर चरित्र की सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक पृष्ठभूमि को भी मंच पर साकार करते हैं।

आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय के अंतर्गत नेपथ्य कर्म की चार विधियां बतलाई हैं-

1. **पुस्त रचना**

   पुस्त रचना का तात्पर्य नाट्य में प्रयुक्त किए जाने वाले नमूने की वस्तुओं के निर्माण से है। इसके अंतर्गत विभिन्न सामग्रियों के निर्माण की विधियां भी बताई गई हैं।

2. **अलंकरण**

   अलंकरण का तात्पर्य अभिनेता को अलंकृत करना है। अभिनेता को मंच पर जाने से पहले पात्रानुरूप अपना अलकरण करना चाहिए। इसके अंतर्गत आचार्य भरत चरित्र के अनुरूप अभिनेता द्वारा धारण किए जाने वाले आभूषणों, पुष्पमाला तथा, वस्त्रों की चर्चा करते हैं

टिप्पणी

3. अंग रचना

अंग रचना भी आहार्य अभिनय का प्रमुख भाग है। अंग रचना में अभिनेता के शरीर को चित्रित किये जाने की विधि का वर्णन है।

4. संजीव

संजीव विधि के अंतर्गत जीवित प्राणियों को मंच पर किस प्रकार स्थापित करना है, इसके विषय में बताया गया है। संजीव अर्थात जीवित प्राणी वर्ग के मंच पर प्रवेश की युक्तिसंगत युक्तियों से है।

आधुनिक संदर्भ में हम आहार्य अभिनय की चर्चा करें तो वर्तमान रंगमंच में बैकस्टेज की पूरी कार्य प्रणाली इसके अंतर्गत आ जाती है। इस बैकस्टेज को हम नेपथ्य कह सकते हैं। जब भी कोई नाटक मंच पर प्रस्तुत किया जाना होता है तो रिहर्सल की प्रक्रिया में मंच निर्माण, वेशभूषा विन्यास, मेकअप, मास्क आदि की प्रक्रिया से गुजरना होता है। तदुपरांत ही कोई नाटक मंचन के लिए तैयार हो पाता है। केवल नाटक को सजाने और संवारने के लिए आहार्य अभिनय की प्रक्रिया पूरी नहीं की जाती है बल्कि इसका अपना भी एक विशिष्ठ महत्व होता है। आहार्य अभिनय के माध्यम से हमें पात्र के विषय में देखकर ही जानकारी मिल जाती है। यदि अभिज्ञानशाकुंतलम् में राजा दुष्यंत का प्रवेश मंच पर हो तो ऐसे में नाटक में प्रयुक्त होने वाली चीजों का निर्माण का निर्माण पुस्त विधान के अंतर्गत किया जाएगा। राजा दुष्यंत के चरित्र द्वारा धारण किया जाने वाला अलंकार तथा वेशभूषा अन्य चरित्रों से भिन्न होगी। क्योंकि दुष्यन्त की वेशभूषा एक राजा के अनुरूप होगी।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. आहार्य अभिनय किसे कहते हैं?

....

2. आहार्य अभिनय की चर्चा नाट्यशास्त्र के किस अध्याय में हैं?

....

3. नेपथ्य विधि की विधियों को लिखिए।

....

4. पुस्त रचना पर चर्चा कीजिए।

....

टिप्पणी

5. संजीव क्या हैं?

....

3.2 पुस्त रचना

पुस्त रचना आहार्य अभिनय में बहुत महत्वपूर्ण होता है। पुस्त रचना विधि द्वारा ही रंगमंडप पर दृश्य उपस्थित किया जाता है। संकेत रूपी मॉडल बनाकर नाटक की वस्तुओं को सारूप प्रदर्शित किया जाना होता है। पुस्त रचना विधि किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप में मंच पर प्रयोग करने की एक युक्ति है।

पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भरत ने नाटक के दौरान मंच पर प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियों का निर्देश किया है। ये तीन प्रकार की होती हैं।

1. **संधिम**

संधिम शब्द का अर्थ है बाँधना या फिर से जोड़ना। संधिम द्वारा वस्तुओं को बाँधकर अथवा आपस में जोड़कर किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। नाट्यशास्त्र में इस विधि से बनाए जाने वाले कई उपकरणों का उल्लेख है जैसे- भोजपत्र, वस्त्र, चर्म, लौह तथा बांस की पत्तियों से अनेक प्रकार की वस्तुओं को बनाया जा सकता है। इनसे मंच पर प्रासाद, दुर्ग, वाहन, रथ, हाथी, घोड़ा जैसी वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है।

2. **व्याजिम**

कृत्रिम माध्यम से बनाए जाने वाली वस्तुएँ व्याजिम कही गई है। इसके माध्यम से रथ, विमान, यान को रंगमंच पर कृत्रिम गति दी जा सकती है। अभिनवगुप्तपाद के अनुसार ये पदार्थ धागे के माध्यम से आगे पीछे कर गतिशील बनाए जाते थे। एक तरह से पदार्थों में क्रियाशिलता करा के वस्तुओं का इस्तेमाल इस विधि से किया जाता है।

3. **वेष्टिम**

इस विधि में जिसमें कपड़े से ढंककर अथवा उसे लपेटकर प्रयोग किया जाता है। इस विधि को वेष्टिम भी कहा जाता है। इसके अनुसार किसी भौतिक पदार्थो का ज्ञान उसकी चेष्टा के प्रदर्शन के संकेत से यदि किया जाय तो वह चेश्टिम फल विधि होगी।

वेष्टिम विधि से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन के लिए प्रयोग में आने वाली नाट्य सामग्री का निर्माण कैसे किया जाता रहा होगा। संस्कृत रंगमंच पर इसी विधि से यान, शैल, विमान और हाथी को मंच पर लाने का प्रयोग होता था। इसी तरह

से छत्र, मुकुट, इंद्रध्वज और नाटक के विभिन्न चरित्र जैसे राजा, मंत्री आदि के लिए प्रयुक्त लकड़ी के आसन, मुण्डासन और मयूरासन जैसी वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। आहार्य अभिनय की इस प्राकृतिक पुस्त रचना से नाट्य प्रयोग को यथार्थवादी रूप देने में अधिक सहायता होती थी।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. पुस्त रचना की विधियाँ लिखिए?

   ....

2. संधिम पुस्त रचना किसे कहते हैं?

   ....

3. व्याजिम पुस्त रचना से क्या अभिप्राय स्पष्ट कीजिए?

   ....

4. वेष्टिम पुस्त रचना पर टिप्पणी लिखिए?

   ....

3.3 अलंकार (अलंकरण)

आहार्य अभिनय में अलंकार का विशिष्ट महत्व है। पुस्त रचना के बाद आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार की चर्चा करते हैं। अलंकार से ही आहार्य अभिनय पूर्णता को प्राप्त करता है। इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेश विन्यास की विवेचना करते हैं।

1. पुष्प माला

आचार्य भरत कहते हैं कि पुष्प माला पांच प्रकार की होती हैं- वेष्टिम, वितत, संघात्य, ग्रंथिम और प्रलम्बित। वेष्टिम माला में हरी पत्तियों तथा पुष्पों को गूंथा जाता है। वितत में पुष्पों की माला कुछ विस्तार के साथ फैली रहती है। संघात्य में पुष्पों के डंठल ध ागे में बींथकर गूंथे जाते हैं। ग्रंथित में केवल पुष्पों को बींथा जाता है और प्रलंबित माला सामान्य माला की तुलना में लंबी और लटकी हुई होती है।

टिप्पणी

2. आभूषण

आभूषण चरित्र के विविध पक्षों का स्वयं ही उद्घाटन करते हैं। आचार्य भरत ने इसी दृष्टि से नाट्य प्रदर्शन के दौरान अभिनेताओं द्वारा पहने जाने वाले विभिन्न आभूषणों को भी धारण करने के विभिन्न तरीकों के आधार पर वर्गीकृत किया है-

1. आबेध्य

इसके अंतर्गत उन आभूषणों की चर्चा उन्होंने की है जो शरीर के किसी अंग को बेधकर पहने जाते हैं। अर्थात् शरीर के किसी भाग कान, नाक अथवा शरीर के अन्य किसी भाग को बींध कर आभूषण का पहना जाता है। उदाहरण के लिए कान के कुण्डल और नाक में पहने जाने वाली नथ। आबेध्य के उदाहरण है।

2. बंधनीय

शरीर के किसी अंग पर बांधकर पहने जाने वाले आभूषण। कुछ आभूषणों को केवल बांधकर धारण किया जाता है। जैसे- केयूर, करधनी आदि।

3. प्रक्षेप्य

ऐसे आभूषण जिन्हें उतारा और पहनाया जाय। जैसे-नूपुर, अंगूठी आदि ऐसे आभूषण हैं जिनको आवश्यकता पड़ने पर पात्रानुरूप पहना जाता है और बाद में उतार लिया जाता है।

4. आरोप्य

ऐसे आभूषण जिन्हें आरोपित किया जाय। जैसे- हेम सूत्र, मणिमाला आदि।

आचार्य भारत इन आभूषणों को वर्गीकृत करने के बाद पुरुष और स्त्रियों के द्वारा उनकी रूचि स्थिति और जाति के अनुसार पहने जाने के विषय में भी बतलाते हैं। देवता, राजा और स्त्रियों द्वारा शरीर के किन अंगों में कौन-कौन से आभूषण पहने जाने चाहिए इसके विषय में वह विस्तार से चर्चा करते हैं। साथ ही वे यह भी बताते हैं कि नाटक के प्रदर्शन के दौरान अभिनेता को अधिक भारी आभूषण अथवा अलंकार प्रयोग में नहीं लाने चाहिए क्योंकि इससे प्रदर्शन करते हुए अभिनेता अथवा अभिनेत्री को थकावट हो सकती है। उनके शरीर से पसीना निकलने लगता है और वह मूर्छित भी हो सकते हैं। ऐसे पात्र जो मनुष्य हैं उन्हें भाव और प्रयत्न के अनुसार ही आभूषण धारण करना चाहिए जो कि उनके देश काल के अनुसार हो।

पुरुषों पात्रों के अलंकार

आचार्य भरत द्वारा पुरुष पात्रों द्वारा धारण किये जाने वाले आभूषणों पर विस्तार से चर्चा की है। इसमें सिर पर चूड़ामणि, कानों में कुण्डल, कंठ में मुक्तावलि, हर्शक तथा सूत्रक, अंगुली में अंगूठी, बाजू के ऊपरी भाग में केयूर और अंगद, वक्षस्थल पर मोतियों की माला, हार और सूत्रक शमिल हैं। इन आभूषणों को देवता या फिर प्रमुख पुरुष पात्रों द्वारा धारण किया जाना चाहिए। इन आभूषणों के धारण मात्र से ही दर्शकों को पात्र के विषय में अनेक प्रकार की जानकारी मिल जाती थी।

स्त्री पात्रों के अलंकारः नाट्यशास्त्र में स्त्री पात्रों के लिए प्रयुक्त अलंकारों की भी विस्तृत सूची प्राप्त होती है। जैसे- सिर पर शिखापाष, शिखाव्याल, पिण्डीपत्र, मकरिका, चूड़ामणि, ललाट पर वेणीगुच्छ, तिलक, कानों में कर्णिका, कुण्डल और कर्णफूल, नेत्रों में काजल, ओष्ठ पर रंग, कण्ठ पर मोतियों की माला, रत्नों की माला और सूत्रक। यह सभी आभूषण देश काल के अनुसार पात्र की प्रवृत्ति को देखकर निश्चित किये गए हैं। आचार्य भरत मुनि का कहना है कि इन आभूषणों का प्रयोग भाव तथा रस को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

3. वेश विन्यास

किस पात्र की वेशभूषा कैसी होनी चाहिए और उन्हें किस तरह धारण किया जाना चाहिए, इस विषय में आचार्य भरत मुनि कहते हैं कि पात्र की वेशभूषा चरित्र की वेशभूषा के अनुरूप रखी जानी चाहिए। इसे वे कई उदाहरणों के साथ भी बतलाते हैं जैसे यक्ष, नाग, अप्सराएं, ऋषि, देवकन्या, गंधर्व, राक्षस, असुर, वानर और मानव स्त्रियों की वेशभूषा, उनका वस्त्र आभूषण, केश विन्यास किस प्रकार का हो? वेशभूषा की चर्चा करते हुए आचार्य भरत विभिन्न देश काल के अनुसार अवंती, गौड़, आभीर, पूर्वोत्तर तथा दक्षिण प्रदेश की नारियों के पात्रों के वेश विन्यास की चर्चा करते हैं और यह भी बतलाते हैं कि दुख वियोग जैसी अवस्था में उनका वेशभूषा विन्यास कैसा होना चाहिए।

विन्यासः नाटक के सभी पात्र विन्यास की भिन्नता के कारण ही एक दूसरे से भिन्न होते हैं। आचार्य भरत कहते हैं कि सिद्ध, गंधर्व और दिव्य नारियों के सिर पर बाल बंधे हुए रखकर मोती पिरोए जाने चाहिए। यक्षिणी और अप्सराओं के अलंकार रत्नों से जड़े होने चाहिए।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. अलंकार के अंतर्गत किन-किन मुख्य बातों पर चर्चा की गई है?

....

2. पुष्प मालाओं के कितने प्रकारों की चर्चा की गई है?

....

3. आभूषण धारण करने की विधियाँ बताइये?

....

4. प्रक्षेप्य आभूषण किसे कहते हैं?

....

3.4 अंग रचना

आहार्य अभिनय में अंग रचना का विशेष योगदान है इसे हम आज की भाषा में रूप सजा भी कह सकते हैं आचार्य भरत कहते हैं कि सबसे पहले निर्देशक को अभिनेताओं के अंगों को उचित समुचित पात्रानुरूप रंगों से रंगना चाहिए। फिर उन्हें पात्र की प्रकृति और उनके कार्य के अनुसार वेश धारण करवाना चाहिए। यहां आचार्य भरत रंगों के विषय में भी बतलाते हैं वह चार स्वाभाविक रंगो सफेद काला पीला तथा लाल से अभिनेता के शरीर को रंगने का निर्देश देते हैं। इसी संबंध में वे संयुक्त वर्ण के प्रयोग की बात भी बतलाते हैं संयुक्त वर्ण से तात्पर्य है ऐसे रंग जो दो रंगों को मिलाकर बनाए जाते हैं। स्वाभाविक और संयुक्त रंगों से अभिनेता को उसकी भूमिका की प्रकृति उम्र देश तथा जाति के अनुसार रंगना चाहिए। अंग रचना के माध्यम से ही अभिनेता परकाया में प्रवेश करता है। अर्थात पात्र के अनुरूप बन पाता है। जब एक अभिनेता अपनी वेशभूषा और रंगों से अपने शरीर को रंग कर चरित्र के भाव उसके आचार विचार और चेष्टाओं का अनुसरण करता है तो वास्तव में वह वही चरित्र बन जाता है। इसी क्रम में आचार्य भरत भारत के मनुष्यों के रंग बतलाते हुए पात्र के देश काल उनके कार्य जाति और प्रदेश का ज्ञान रखते हुए शरीर को रंगने का निर्देश देते हैं।

वर्ण (रंग)

नाट्यशास्त्र में रंगों का बहुत ही वैज्ञानिक वर्णन दिया गया है। नाट्यशास्त्र में चार प्रमुख रंगों की बात कही गई है।

1. सित (उज्जवल) रंग, 2. पीत रंग, 3. नील रंग और 4. रक्त वर्ण।

इन्हीं चार वर्णों के योग से अन्य वर्णों का निर्माण किया जाता था-

सफेद तथा पीले के मिश्रण से पाण्डु रंग का निर्माण होता था।

सित तथा नीले के मिश्रण से कपोत रंग का निर्माण होता था।

सित तथा लाल के मिश्रण से कमल रंग का निर्माण होता था।

पीले तथा नीले के मिश्रण से हरित रंग का निर्माण होता था।

नीले तथा लाल के मिश्रण से कशाय रंग का निर्माण होता था।

पीले तथा लाल के मिश्रण से गौर रंग का निर्माण होता था।

नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि इसी तरह से कई रंगों को मिलाकर विभिन्न रंग भी बनाए जा सकते हैं। इस विधि को ध्यान में रखकर ही पात्र की भूमिका के अनुसार अभिनेता के शरीर को रंगा जाना चाहिए।

इस प्रकार वर्ण योजना बतलाकर आचार्य भरत विभिन्न पात्रों के लिए रंग रोगन हेतु वर्णों का नियोजन भी करते हैं। जैसे- राजा के लिए कमल, श्याम या गौर वर्ण, सुखी व्यक्ति हेतु गौर वर्ण, दुराचारी व्यक्ति के लिए श्याम, तपस्वियों के लिए असित। वे यह भी कहते हैं कि पात्र की मनोदशा को ध्यान में रखकर ही उसकी अंगरचना और वर्ण का निर्धारण करना चाहिए।

श्मश्रु कर्म

पात्रों के शरीर को रंगने के बाद उनके देशकाल, उम्र और अवस्था के अनुरूप ही श्मश्रु कर्म भी रखने चाहिए। वे इनके चार स्वरूप का भी वर्णन करते हैं-

1. **शुद्ध**

   बनी हुई या साफ श्मश्रु। इसमें दाढ़ी पर केश नहीं होतें, वह साफ रहती है। ब्रम्हचारी, वानप्रस्थी, मन्त्री, पुरोहित आदि चरित्रों के लिए इस प्रकार के श्मश्रु का प्रयेग किया जाना चाहिए।

2. **विचित्र**

   अच्छी तरह से बनी संवरी श्मश्रु। इस प्रकार के श्मश्रु को घुर्रे अर्थात उस्तरे से उचित आकार में लाकर आकर्षक बनाया जाता है। राजा, राजकुमार, राजपुरुष, श्रृंगारिक प्रवृत्ति के पात्र, आदि के लिए इसी प्रकार के श्मश्रु का विधान किया जाना चाहिए।

3. **श्याम**

   कुछ उगी हुई श्मश्रु। प्रतिज्ञा पर अटल, प्रतिशोध लेने के लिए प्रवृत्त पात्रों, तपस्वी और व्रत धारण करने वाले पात्रों के लिए श्याम श्मश्रु रखा जाना चाहिए।

टिप्पणी

4. **रोमश**

घनी उगी हुई श्मश्रु। ऋशि, तपस्वी तथा दीर्घव्रतधारी पात्रों के लिए रोमश श्मश्रु का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वेश

विभिन्न पात्रों का अपने परिस्थिति अनुरूप वेश होता है। आचार्य भरत ने इसे तीन प्रमुख प्रकारों में बांटा है-(1) शुद्ध, (2) विचित्र, तथा (1) मलिन। किसी मंदिर में जाने, मंगल कार्यो के समय, किसी विशेष तिथि में, विवाह के समय में स्त्रियों और पुरुषों का वेश 'शुद्ध' होना चाहिए। उच्च कुलीन पात्रों के लिए भी इसी वर्ग का वेश होना चाहिए। 'विचित्र' वेश उन्हें धारण करना चाहिए जो देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस, राजा तथा कामुक प्रवृत्ति के पात्र हों। इसी प्रकार थके हुए पात्र, पथिक और विपत्तियों में घिरे हुए पात्र का वेश 'मलिन' होता है।

मुकुट

इसी किसी क्रम में वह देवता और राजा के द्वारा पहने जाने वाले मुकुट के तीन प्रकार की भी चर्चा करते हैं- (1) पार्श्वगत, (2) मस्तकी और (3) किरीट। वे विभिन्न पात्रों के अनुरूप मुकुट के प्रयोग के बारे में बतलाते हैं। सामान्य रूप से देव, गंधर्व, यक्ष, नाग और राक्षसों तथा सामान्य देवों के मुकुट 'पार्श्वगत' स्वरूप वाले होने चाहिए। देवताओं में जो श्रेष्ठ हों उनके लिए 'किरीट' तथा मध्यम स्वभाव के देवों के लिए 'मस्तकी' मुकुट का प्रयोग करना चाहिए। राजाओं का मुकुट 'मस्तकी' होना चाहिए। साथ हि विद्याधर, सिद्ध और चारण गंधर्व के केशों से 'ग्रथित मुकुट' का नियोजन किया जाना चाहिए।

केश विन्यास

विभिन्न पात्रों के केश विन्यास के बारे में भी आचार्य भरत अंगरचना के अंतर्गत बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन करते हैं। उनके अनुसार राक्षस, दानव और दैत्यों के भूरे बाल और हरी मूंछों वाले मुकुटधारी चेहरे होने चाहिए। पिशाच, पागल, भूत, साधु और प्रतिज्ञा पर अडिग न रहने वाले व्यक्ति के बाल लंबे और बिखरे हुए होनें चाहिए। इसी प्रकार बौद्ध साधु, जैन मुनि, श्रोत्रिय ब्राहमण, परिब्राजक और यज्ञ में दीक्षित पात्र का मस्तक मुंड़ा हुआ रखना चाहिए। इस प्रकार अर्थ के अनुरूप तथा देश, जाति आदि के अनुसार विविध अवस्थाओं के अनुसार केश विन्यास का नियोजन किया जाना चाहिए।

संजीव

संजीव का तात्पर्य रंगमंच पर प्रवेश करने वाले पशु प्राणी से है। नाट्यशास्त्र में संजीव के अंतर्गत इन पशु प्राणियों के मंच पर उपस्थिति का विधान बतलाया है। इसके लिए कहा गया

है कि संजीव के तीन प्रकार है- चतुष्पद, द्विपद और अपद। चतुष्पद अर्थात वे जानवर जिनके चार पैर होते हैं। द्विपद अर्थात दो पैर वाले और अपद का तात्पर्य सर्प जैसे बिना पैर वाले जीव-जंतुओं से है। भरत बतलाते हैं कि छोटे और सरल प्राणियों को तो मंच पर लाया जा सकता है लेकिन विशाल हिंसक पशुओं जैसे- शेर, बाघ और अपद में सर्प को मंच पर नहीं लाया जा सकता। यदि नाट्य मंचन में इनके प्रवेश का वर्णन हो तो ऐसे में कृत्रिम रूप में उन्हें मंच पर लाया जा सकता है। आगे वे इनके कृत्रिम रूप को बनाए जाने का भी वर्णन करते हैं।

पटी घटी की रचना

संजीव के अंतर्गत पटी घटी का भी प्रयोग किया जा सकता है। यह एक प्रकार का आवरण जैसा होता है। इसे धारण कर व उस प्राणी की चेष्टा का अनुसरण कर अभिनेता किसी प्राणी के रूप रचना को प्रदर्शित कर सकता है। वे इस पटी घटी को बनाए जाने की विधि के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि इसका माप बत्तीस अंगुल होना चाहिए। इसे बीलों के घोल से कपड़े को पोतकर तैयार किया जाना चाहिए। बीले के गीले रस या बीले के छिलकों या उसके घोल के साथ राख मिट्टी या धान के भूसे को मिलाकर 'चेहरे' बनाए जाने चाहिए और फिर बीले के रस से भिगोए कपड़ों से ढँक देना चाहिए। बीलों के छिलके से बनने वाली 'पटी' जिस पर कपड़ा लगाया गया है, न तो बहुत मोटी, न बहुत पतली और न ही नरम बनाई जानी चाहिए। जब यह पटी आग या धूप में सूख जाए तो इसमें उपयुक्त जगह पर छेद किया जाना चाहिए। यह छेद किसी तीखे औजार से किये जाएं और आधे-आधे भाग में बांटकर किये जाएं। इस प्रकार भरत चेहरों के लिए बनाई जाने वाली 'पटी' निर्माण बताते हैं।

अन्य उपकरणों का प्रयोग

नाटक के प्रदर्शन के दौरान पात्र प्रयोग के लिए उपयोगी उपकरणों को नाट्यमंचन की आवश्यकता के अनुसार ही निर्मित किया जाना चाहिए। ये उपकरण जहाँ से प्राप्त होते हैं। उसे उसी व्यक्ति के पास जाकर निर्माण करवाना चाहिए क्योंकि उस व्यक्ति को उस उपकरण का विशेष ज्ञान होता है। जो व्यक्ति उस वस्तु को अपनी विशेष कला से बनाता है उसे उस वस्तु के माप और सभी लक्षणों का ज्ञान होता है।

आचार्य भरत ये भी बतलाते हैं कि जो वस्तुएँ बड़ी तथा लोहे और लकड़ी से बनाई गई और भारी होती हैं उनसे नाट्य उपकरण नहीं बनाए जाने चाहिए क्योंकि वजन ज्यादा होने से कलाकारों को बहुत श्रम करना पड़ सकता है। संसार में विभिन्न स्वरूप और लक्षण वाली वस्तुएँ होती हैं। नाटक में उनकी 'प्रतिकृति' का प्रयोग करना चाहिए। हालांकि महल, मकान और यान का नाट्य प्रदर्शन में प्राय: उपयोग होता ही है लेकिन इनके यथार्थ रूप का निर्माण मंच पर नहीं किया जा सकता। इसके लिए आचार्य भरत लोक तथा नाट्यधर्मी युक्ति बतलाते हैं। नाटक में प्रयुक्त उपकरण में कुछ उपकरण लोकधर्मी भी होने चाहिए और कुछ उपकरण नाट्यधर्मी होने चाहिए। यदि कोई उपकरण अपने स्वाभाविक रूप में इस्तेमाल किया जाता है तो वह लोकधर्मी है और जब उस उपकरण की भावना या फिर उसके परिवर्तित रूप का

व्यवहार नाट्य प्रदर्शन में किया जाता है तो वह नाट्यधर्मी कहलाता है। आचार्य भरत बतलाते हैं कि नाट्य मंचन में उपयोगी उपकरण लोहे और अन्य धातुओं से बने हुए नहीं होने चाहिए क्योंकि यदि यह इन धातुओं से बनेंगे तो वे भारी होंगे और इससे कलाकारों को अत्यधिक श्रम करना पड़ेगा। इसलिए नाटक में उपयोगी उपकरणों को लाख, लकड़ी, चमड़ा, कपड़ा, भोजपत्र या बाँसों की खपच्चियों के द्वारा हल्की-फुल्की बनाई जानी चाहिए ताकि मंच पर अभिनेता इसे सुगमता से प्रयोग कर सकें। ढाल, पर्वत, महल, मंदिर, घोड़ा, हाथी, रथ, विमान और मकान को रंगमंच में प्रयोग करने के पहले बाँस से उनकी उचित शक्ल तैयार कर फिर उन्हें रंगीन वस्तुओं से ढक कर उसे मूल रूप देकर मंच पर प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार नाटक में प्रयोग होने वाले शस्त्र भी घास या बांस की खपच्चियों से बनाए जाने चाहिए और लाख तथा मांड के साथ इन वस्तुओं को बनाकर प्रदर्शित करना चाहिए। कई वस्तुओं की प्रति कृतियाँ तैयार कर उन्हें नाटक में प्रयोग करना चाहिए।

3.5 नाट्य में आहार्य अभिनय का महत्व

नाटक की प्रस्तुति में आहार्य अभिनय का विशिष्ट योगदान होता है। अभिनेता नेपथ्य से ही विभिन्न पात्रों की प्रकृति और शोक आदि अवस्थाओं के अनुसार वेशभूषा और रंग रोगन कर मंच पर उपस्थित होता है और जब वह अपने आंगिक और वाचिक अभिनय के साथ प्रदर्शन करता है तो दर्शकों को चरित्र का रूप दिखाई देता है। इसी अभिनय भेद से अभिनेता वास्तव में परकाया प्रवेश करता है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे आत्मा एक देह को छोड़कर दूसरे देह में प्रवेश करता है। नेपथ्य में आहार्य अभिनय के साथ ही वह अपने व्यक्तिगत भावों को छोड़कर पात्र के भाव को ग्रहण करने में सक्षम हो पाता है। यह एक श्रमसाध्य कार्य है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आचार्य भरत ने अपने तत्कालीन रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में आहार्य अभिनय के अंतर्गत जिन नेपथ्य कर्म की विधियों की चर्चा की है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिनेता केवल आंगिक, वाचिक अभिनय के माध्यम से ही चरित्र को रूपायित पूर्णतया नहीं कर सकता। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह चरित्र के अनुरूप ही वेशभूषा, आभूषण, केश विन्यास, अलंकरण, अंग रचना और नाट्य युक्तियों के माध्यम से वस्तुओं के विभिन्न अर्थों में रूप भी तैयार करे और उनका प्रयोग भी करे। आचार्य भरत पुस्त रचना के अंतर्गत मंच पर प्रदर्शित किए जाने वाले वस्तुओं की चर्चा विस्तार से करते हैं और उन वस्तुओं को बनाए जाने के लोकधर्मी और नाट्यधर्मी दो नियम बदलाते हैं। यदि समग्रता से हम देखें तो चरित्र के स्वरूप को अभिनेता में आरोपित करने का मुख्य कार्य आहार्य अभिनय करता है। चूँकि नाट्य प्रदर्शन श्रव्य और दृश्य दोनों ही माध्यमों में दर्शकों के समक्ष आता है। ऐसे में यह अत्यंत आवश्यक होता है कि नट अर्थात अभिनेता चरित्र के अनुरूप दिखे। ऐसे में आहार्य अभिनय के माध्यम से ही अभिनेता चरित्र के रूप को अपने ऊपर आरोपित करता है। साथ ही साथ वह सभी वस्तुएँ जो अपने यथार्थ रूप में रंगमंच पर नहीं प्रयुक्त की जा सकती हैं। उनके प्रयोग के विविध विधियां भी एक नाट्य प्रस्तुतिकर्ता को जानना जरूरी है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 3.4

1. वर्ण के कितने प्रकार है?

   ....

2. श्मश्रु कर्म के कितने प्रकार है?

   ....

3. वेश के तीन प्रकार कौन-कौन से है?

   ....

4. मुकुट के प्रकार बतलाइए है?

   ....

5. पटी घटी क्या है?

   ....

आपने क्या सीखा

- नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की चर्चा की गई है। इस अभिनय में वेशभूषा, सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्रायः नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है।
- आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय के अंतर्गत नेपथ्य कर्म की चार विधियां बतलाई हैं- पुस्त, अलंकार, अंगरचना और संजीव।
- पुस्त का अर्थ- किसी वस्तु की सांकेतिक रचना। इस पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भरत में मंच पर नाटक के दौरान प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियां बतलाई हैं।
- आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार के अंतर्गत पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना करते हैं।
- ऐसे पात्र जो मनुष्य हैं उन्हें भाव और प्रयत्न के अनुसार ही आभूषण धारण करना चाहिए जो कि उनके देश काल के अनुसार हो।

- पात्र की वेशभूषा चरित्र की वेशभूषा के अनुरूप रखी जानी चाहिए। इसे वे कई उदाहरणों के साथ भी बतलाते हैं जैसे यक्ष, नाग, अप्सराएं, ऋषि, देवकन्या, गंधर्व, राक्षस, असुर, वानर और मानव स्त्रियों की वेशभूषा, उनका वस्त्र आभूषण, केश विन्यास किस प्रकार का हो।

- निर्देशक को अभिनेताओं के अंगों को उचित रंगों से रंगना चाहिए। फिर उन्हें चरित्र की प्रकृति और उनके कार्य के अनुसार वेश धारण करवाना चाहिए।

- यहां आचार्य भरत रंगों के विषय में भी बतलाते हुए चार स्वाभाविक रंगों- सफेद, काला, पीला तथा लाल से अभिनेता के शरीर को रंगने का निर्देश देते हैं

- विभिन्न पात्रों का अपने परिस्थिति अनुरूप वेश होता है। आचार्य भरत ने इसे तीन प्रमुख प्रकारों में बांटा है-(1) शुद्ध, (2) विचित्र, तथा (1) मलिन।

- वे मुकुट के तीन प्रकार की भी चर्चा करते हैं- (1) पार्श्वगत, (2) मस्तकि और (3) किरीट।

- संजीव का तात्पर्य रंगमंच पर प्रवेश करने वाले पशु प्राणी से है। आचार्य भरत ने संजीव के अंतर्गत इन पशु प्राणियों के मंच पर उपस्थिति का विधान बतलाया है

प्रायोगिक प्रश्न

1. पुस्त रचना से क्या अभिप्राय है? शिक्षार्थी के पास पुस्त रचना के अनुसार उपलब्ध किसी भी सामग्री का प्रयोग कर पुस्त रचना के अनेक प्रकारों में से किसी एक का चयन कर पुस्त रचना करके दिखाएं।

2. अलंकार के विषय में बतलाइये। शिक्षार्थी अपने आसपास के किन्हीं फूलों का चयन कर वेश्टिम माला का या अन्य किसी माला का निर्माण करके दिखाएं।

3. अंगरचना के बारे में बतलाइये। संयुक्त वर्णों का प्रयोग करते हुए शिक्षार्थी भूमिका के अनुरूप रंगों का प्रयोग करके दिखाएं।

4. संजीव क्या है? अपने पास उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके किसी एक संजीव का निर्माण करके दिखाएं।

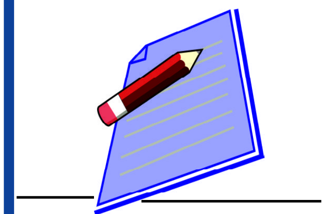

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. इस अभिनय में वेशभूषा, सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्रायः नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है।
2. नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की चर्चा की गई है।
3. नेपथ्य की चार विधियां है-पुस्त रचना, अलंकरण, अंगरचना और संजीव।
4. पुस्त का अर्थ- किसी वस्तु की सांकेतिक रचना। इस पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भरत में मंच पर नाटक के दौरान प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियां बतलाई हैं।
5. संजीव का अभिप्राय जीवित प्राणी वर्ग के मंच पर प्रवेश की युक्तियों से है।

3.2

1. पुस्त रचना की तीन विधियाँ हैं-संधिम, व्याजिम और वेश्टिम।
2. संधिम का अर्थ है बाँधना या फिर जोड़ना। इसके द्वारा वस्तुओं को बाँधकर अथवा आपस में जोड़कर किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है।
3. मशीनों के माध्यम से बनाए जाने वाली वस्तुएँ व्याजिम कही गई है। इसके माध्यम से रथ, विमान, यान को रंगमंच पर कृत्रिम गति दी जा सकती है।
4. यह ऐसी पुस्त विधि है जिसमें कपड़े से ढंककर अथवा उसे लपेटकर प्रयोग किया जाताहै।

3.3

1. इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना की गई है।
2. वेष्टिम, वितत, संघात्य, ग्रंथिम और प्रलम्बित।
3. आबेध्य, बंधनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य
4. ऐसे आभूषण जिन्हें उतारा और पहनाया जाय। जैसे-नूपुर, अंगूठी आदि।

3.4

1. सित (उज्जवल), पीत, नील और रक्त।
2. शुद्ध, श्याम, विचित्र और रोमश
3. शुद्ध, विचित्र, तथा मलिन।
4. पार्श्वागत, मस्तकि और किरीट
5. यह एक प्रकार का आवरण सा होता है जिसे धारण कर व उस प्राणी की चेष्टा का अनुसरण कर अभिनेता उस प्राणी की रूप रचना को प्रदर्शित कर सकता है।

4

सात्विक तथा चित्राभिनय

आचार्य भरत ने आंगिक, वाचिक तथा आहार्य अभिनय की चर्चा करने के बाद सात्विक अभिनय को सबसे महत्वपूर्ण बतलाया है। यह अभिनय की वह चेतना है जिसके बिना अभिनय प्राय: निश्प्राण होता है। इसी प्रकार चित्राभिनय भी आंगिक अभिनय की ही एक सांकेतिक युक्ति है जिसके माध्यम से काल्पनिक चित्रों को जीवंत कर दर्शकों को किसी विशिष्ट चित्र का आभास कराया जा सकता है।

इस अध्याय में हम सात्विक अभिनय और चित्राभिनय के बारे में चर्चा करेंगे। आंगिक, वाचिक, आहार्य के उपरांत सात्विक और चित्राभिनय की क्या उपयोगिता है। यह हमें जानने की अत्यंत आवश्यकता है। सात्विक भाव कौन-कौन से हैं और किस प्रकार उन्हें आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में व्याख्यायित किया है। यह जानना हमारे लिए जरूरी है। क्योंकि किसी भी अभिनेता को दक्षता प्राप्त करने के लिए यह जानना बहुत ही आवश्यक है।

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- सात्विक अभिनय के विषय में जानते हैं;
- रस के विषय में जानते हैं और तदनुरूप सात्विक अभिनय कर पाते हैं;
- भाव के विषय में जानते हैं; और
- अभिनय में सत्व के महत्व को जानते हैं।

टिप्पणी

4.1 सात्विक अभिनय

सात्विक शब्द 'सत्व' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है- 'सतोभाव' अर्थात होने का भाव। इस प्रकार 'सात्विक भाव' का तात्पर्य उन भावों से है जो नट के अंत:प्रेरणा से सहज और सरल रूप में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। आचार्य भरत ने सात्विक भावों की चर्चा सातवें अध्याय मे भावों का वर्णन करते हुए अनुभाव के अंतर्गत की है। भाव की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं- ये भाव भावन कराने के अनुसार इस संज्ञा से जाने जाते हैं। और ये भाव किसका भावन कराते हैं? ये शब्दों (वाणी), शरीर के अवयवों तथा सात्विक भावों के द्वारा दृश्य काव्य के अभिप्रायों का भावन कराते हैं। भावित (भाव कराना), वासित (वास कराना) और कृत (किया जाना) भी इसी अर्थ को प्रकट करने वाले हैं। लौकिक व्यवहार मे भी ये एक-दूसरे की सुगंध से या रस से भावित हैं, इत्यादि प्रयोग होते देखे जा सकते हैं। यहाँ 'भावन' का अर्थ है व्यापना अर्थात होना। इस भावन से ही दर्शकों में रस का संचार होता है। वाणी के वर्णनात्मकरूप, आंगिक क्रिया, आत्मा के अंतर्भाव और सात्विक अभिनय के बाह्य क्रिया के द्वारा काव्यार्थ रस को प्राप्त करता है।

इस प्रकार सात्विक अभिनय का अस्तित्व होने के भाव से है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि यदि अभिनेता रोने का अभिनय कर रहा है किंतु रोते समय उसकी आँखों से आँसू नहीं बहते, उसकी वाणी में सिसकने के गुण नहीं तो ऐसे में दर्शक में रोने के भाव नहीं जगेंगे और ऐसा अभिनय सात्विक नहीं होगा। किंतु इसी के विपरीत यदि अभिनेता रोते समय अपने मन से उस भाव को अनुभव कर रोता है तो निश्चय ही उसकी आँख से आँसू बहेंगे, वाणी में सिसकियाँ होंगी और दर्शक की आँखें भी भर आएंगी।

4.2 रस

नाट्य कला विवेचन में रस का महत्वपूर्ण योगदान है। आचार्य भरत ने नाट्य प्रदर्शन में नाटक के जिन तत्वों की चर्चा की है उन सब का एकमात्र लक्ष्य रस की निष्पत्ति कराना ही है। वाचिक अभिनय के द्वारा रस का बोध होता है और आंगिक तथा आहार्य अभिनय वाक्य के अर्थ की ही अभिव्यक्ति करते हैं। आचार्य भरत ने नाट्य प्रदर्शन के संदर्भ में ही रस की चर्चा की है। वह रस की स्थापना करने वाले आचार्य माने जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है आचार्य भरत के पूर्व भी कई आचार्यों की अनुवांशिक आर्याएँ और कारिकाओं के संबंध में उन्होंने स्वयं चर्चा की है। इस प्रकार यह कहना कि आचार्य भारत ने ही रस सिद्धांत की स्थापना की है यह पूर्णरूपेण सत्य नहीं है। आचार्य भारत के पूर्व भी रस सिद्धांत चर्चा में था किंतु सत्य यह है कि आचार्य भरत ने नाट्य के संदर्भ में रस सिद्धांत की व्याख्या की है।

रस

रस के आदि प्रणेता और व्याख्याता भरत ही माने जाते हैं। उन्होंने रस का विश्लेषण नाटक

टिप्पणी

के संबंध में किया है। यह तो सत्य है कि रस का प्रेरणास्रोत वेद और अन्य दूसरे प्राचीन साहित्य रहे होंगे। यह भी उल्लेख मिलता है कि अथर्ववेद से रस तत्व को ब्रह्मा द्वारा नाट्य वेद की रचना में प्रयुक्त किया गया है। रस आनंद का स्वरूप है ऐसा विवरण उपनिषदों में भी मिलता है। आचार्य अभिनव गुप्त की माने तो रस रूप में आनंद में ज्ञान स्वरूप आत्मा का आस्वादन होता है। आत्मा आनंद रूप है और रस भी आस्वाद्य होने के कारण आनंद स्वरूप है। इस प्रकार किसी रचना को देखने, सुनने से जिस आनंद की अनुभूति होती है उसे रस कहा जा सकता है। अगर नाटय के संदर्भ में बात करें तो रंगमंच में प्रदर्शित किए जाने वाले दृश्य काव्य को देखकर सामाजिक के हृदय में जिस आनंद की अनुभूति होती है वही रस है।

रस निष्पत्ति

आचार्य भरत ने अध्याय में रस निष्पत्ति के विषय में बतलाया है। उनके अनुसार विभाव अनुभाव और संचारी भाव के योग से रस की निष्पत्ति होती है। वे स्वयं लिखते हैं- **विभावानुभाव संचारी संयोगात रस निष्पत्तिः।**

आचार्य भारत ने रस की तुलना विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के स्वाद से की है। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों का भोग करने वाला व्यक्ति रस का आस्वादन करता है उसी प्रकार विभाव और विभिन्न प्रकार के संचारी भावों तथा अनुभावों से जोड़कर स्थायी भावों को सहृदय दर्शक मन से आस्वादन करते हैं। यह आस्वाद ही नाट्य रस है।

रस के प्रकार

आचार्य भरत ने आठ रसों को स्वीकार किया है। उन्होंने मूल रूप से चार ही रस माने हैं बाकी चार को उन्ही से उपजा माना है। श्रृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, रौद्र से करुण और वीभत्स से भयानक। इस मान्यता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत से पूर्व केवल चार ही रस अस्तित्व में थें बाद में चार अन्य ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की थी।

श्रृंगार रस

श्रृंगार रस का उद्भव रति नामक स्थाई भाव से होता है। यह विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से उत्पन्न होता है। उत्तम स्वभाव के अनुरक्त युवा और युवतियों का रति भाव आस्वाद योग्य होता है। सीता राम जैसे उत्तम प्रकृति के चरित्रों के अनुकार्य सामाजिक के हृदय में भी आस्वाद योग्य होते है क्योंकि अनुकार्य और परीक्षक दोनों के सुख-दुख आत्मक भावों के साधारणीकरण के द्वारा तादात्मय की प्रतीति होती है। यह तादात्मय में प्रतीति ही रस के द्वार को खोल देता है। संयोग और वियोग श्रृंगार रस की दो अवस्थाएं हैं। संयोग श्रृंगार में सुंदर ऋतु, माल्य, अनुलेपन, अलंकार, प्रिय विषय, भव्य भवन, रमणीय उपवन, गमन, जल क्रीड़ा और अन्य लीला आदि विभागों से यह उत्पन्न होता है। वहीं प्रिय से अलग होने पर वियोग

टिप्पणी

श्रृंगार की अवस्था होती है। इस प्रकार प्रिय और प्रियतमा दोनों के मिलन पर संयोग और दोनों के बिछड़ने पर वियोग श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

हास्य रस

हास्य रस हास स्थायी भाव से उत्पन्न होता है। किसी पात्र के विकृत वेश, अलंकार, निर्लज्जता, लालचीपन, असंगत भाषण और अंगों के विकृत रूप विवाह आदि के प्रदर्शन के द्वारा यह उत्पन्न होता है। संस्कृत नाटकों में चरित्र विदूषक का प्रयोग इस रस को लक्ष्य करके किया जाना चाहिए ऐसा आचार्य भरत नाट्यशास्त्र में उल्लेख करते हैं।

करुण रस

शोक नामक स्थाई भाव से करुण रस की उत्पत्ति होती है। यदि श्राप के प्रभाव से प्रियजन से वियोग हो जाए, बंधन, देश निर्वासन, अग्नि में जलकर मरना अथवा विपत्ति जैसे विभावों से यह करुण रस उत्पन्न होता है। करुण रस के उत्पन्न होने पर आंख से आंसू का आना, सुख में दुःखी होना, मुख्य रंग का उड़ जाना, अंको में शिथिलता आना, लंबी सांसे भरना और स्मृति का खो जाना जैसे कई अनुभावों से इसका अभिनय होता है।

रौद्र रस

राक्षस, दानव और रौद्र प्रकृति के मनुष्यों के क्रोध रूपी स्थाई भाव से रौद्र रस की उत्पत्ति होती है। यह क्रोध भाषण, चकोर वाणी, ईर्ष्या आदि उद्दीपन विभागों से उत्पन्न होता है। इसमें ताड़ना, शस्त्र का प्रयोग और खून का बहना जैसे कार्य विशेष रूप से दिखाई देते हैं।

वीर रस

उत्साह नामक स्थाई भाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है। स्थिरता, धैर्य, शूरवीर का त्याग और निपुणता आदि अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है। दान, धर्म और युद्ध में वीरता के प्रदर्शन के आधार पर इसके तीन भेद होते हैं- दानवीर धर्मवीर और युद्धवीर

भयानक रस

भय नामक स्थाई भाव से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। यह विकृत शब्द पिशाच आदि के देखने से भय, उद्योग, जंगल, अपने प्रिय व्यक्तियों के वध यापन बंधन देखने से या सुनने से उत्पन्न होता है। हाथ पैर का कांपना, आंखों में चंचलता, शरीर का रोमांचित हो जाना, मुख का फीका पड़ जाना और स्ववेंद जैसे अनुभवों से इसका अभिनय होता है।

वीभत्स रस

जुगुप्सा नाम के स्थाई भाव से वीभक्त रस की उत्पत्ति होती है। किसी कुरूप, अप्रिय, अपवित्र

और अनिष्ट वस्तु को देखने या सुनने जैसे विभावों से यह उत्पन्न होता है। सब अंगों को सिकोड़ना जैसे अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है। वीभत्स रस वु लिए घृणा और जुगुप्सा का होना आवश्यक है।

अद्भुत रस

आश्चर्य या विस्मय नाम के स्थाई भाव से अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है। किसी दिव्य जनों के दर्शन, इच्छित मनोरथ के प्राप्त होने, मनोरम उपवन में जाने अथवा देवकुल में प्रवेश करने, विमान, माया इंद्रजाल की संभावना जैसे विभावों से यह रस उत्पन्न होता है। किसी चमत्कृत कर देने वाले दृश्य अथवा कार्य के देखने से अद्भुत रस का आनंद मिलता है।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. सात्विक से आप क्या समझते हैं?

....

2. रस क्या है?

....

3. आचार्य भरत ने कितने रस की चर्चा की है?

....

4. रससूत्र क्या है?

....

5. भाव क्या हैं?

....

6. मूलतः चार रस कौन-कौन से हैं?

....

7. संयोग श्रृंगार क्या है?

....

8. हास्य रस से क्या अभिप्राय है?

....

9. वीर रस क्या है?

....

10. अद्‌भुत रस क्या है?

....

4.3 भाव

रस की उत्पत्ति के लिए भाव महत्वपूर्ण होते हैं बिना अभाव के रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती और बिना रस के भावों का भी कोई अस्तित्व नहीं होता है। हृदय में उठने वाली अनुभूतियों, संवेगों और नाना प्रकार की मनोदशा को भाव कहते हैं। आचार्य भरत ने भावों की संख्या 4 बतलाई है–

1. स्थायी भाव
2. विभाव
3. अनुभाव और
4. संचारी भाव।

स्थायी भाव

जब सहृदय दर्शक नाट्य प्रदर्शन को देखने के लिए नाट्य मंडप में प्रवेश करता है तो उसके हृदय में कुछ भाव स्थाई रूप से निवास करते हैं। इन भावों को ही स्थाई भाव कहा गया है। स्थाई भाव की संख्या 9 मानी गई है। प्रत्येक रस के लिए एक स्थाई भाव का नियोजन किया गया है।

रस	स्थायी भाव
श्रृंगार	रति
हास्य	हास

टिप्पणी

करुण	शोक
वीर	उत्साह
रौद्र	क्रोध
भयानक	भय
वीभत्स	जुगुप्सा
अद्भुत	विस्मय

ये स्थायी भाव रस उत्पत्ति के लिए बहुत ही आवश्यक होते हैं।

विभाव

विभाव का तात्पर्य उन भावों से है जिन्हें देखकर अथवा अनुभव कर स्थाई भाव जागृत होते हैं। इनके दो भेद बतलाए गए- आलंबन और उद्दीपन। आलंबन वह है जिसके लिए स्थाई भाव उत्पन्न होता है और उद्दीपन का तात्पर्य उन भावों से है जिन से स्थाई भाव की उत्पत्ति को बढ़ावा मिलता है। इसी तरह आलंबन के भी दो भेद बतलाए गए हैं- आश्रय और विषय। आश्रय वह है जब व्यक्ति के मन में भाव जागृत होते हैं और विषय वह है जिसके लिए मन में भाव जागृत होते हैं। इस तरह इस भाव का तात्पर्य उन कारणों से है जिनसे मन में स्थाई भाव पैदा होता है।

अनुभाव

आचार्य भरत के अनुसार वाचिक, आंगिक तथा सात्विक क्रियाएँ अभिनय को अनुभूति योग्य बनाते हैं। इसका मतलब है कि वाणी, अंग और सत्व (मन) से युक्त चेष्टाएँ ही अनुभाव हैं। इससे संबंधित नाट्यशास्त्र में श्लोक है-

वागङाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
शाखाङोपाङसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृते॥

इस श्लोक का अभिप्राय है कि यह (अनुभाव) दर्शकों को वाणी तथा अंग के अभिनय के द्वारा अर्थ की अनुभूति कराता है। अतः शाखा, अंग एवं उपांगों से संयुक्त यह 'अनुभाव' कहलाता है। इस अनुभाव का संबंध मुख्य रूप से आंगिक और वाचिक अभिनय से है। अनुभाव एक तरह से मन में स्थित आंतरिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति की तरह होते हैं। जैसे क्रोध में नसों का फूल जाना या आंखों का लाल हो जाना। अनुभाव के मुख्य रूप से चार

प्रकार स्वीकार किए गए-

1. कायिक
2. वाचिक
3. आहार्य
4. सात्विक।

1. कायिक

शरीर की क्रियाओं से संबंधित अनुभाव।

2. वाचिक

वाणी आदि से अभिव्यक्त अनुभाव।

3. आहार्य

आहार्य आदि से अभिव्यक्त अनुभाव।

4. सात्विक

सत्व से की गई कायिक चेष्टाएँ सात्विक अनुभाव की श्रेणी में आती हैं।

5. सात्विक भाव

आचार्य भरत ने मन की एकाग्रता से जुड़े इन सात्विक भावों की संख्या आठ बताई है- (1) स्तम्भ, (2) स्वेद, (3) रोमांच, (4) स्वरभंग, (5) वैवर्ण्य, (6) वेपथु, (7) अश्रु तथा (8) प्रलय। इन सात्विक भावों के प्रयोग की विधि भी भरत आगे बतलाते हैं।

1. **'स्तम्भ'**- क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दु:ख, श्रम आदि के कारण आंगिक संचालन का जड़ हो जाना
2. **'वेपथु'**- शीत, भय, क्रोध, हर्ष, स्पर्श, बुढ़ापा तथा रोग से शरीर का कांपना।
3. **'स्वेद'**- क्रोध, भय, व्यायाम की स्थिति मे रोम पर जल बिंदु का निकल आना।
4. **'अश्रु'**- आनंद, क्रोध, आँखों मे धुआँ लगने, जम्हाई, भय, शोक मे आँखों मे पानी आना।

5. **'रोमांच'**- शीत, भय, हर्ष, क्रोध, रोग अरिादि से शरीर के रोम का खड़ा हो जाना।

6. **'वैवर्ण्य'**- शीत, भय, क्रोध, थकावट, रोग, क्लेश तथा ताप से चेहरे का रंग बदल जाना

7. **'स्वरभंग'**- भय, क्रोध, हर्ष, बुढ़ापा, गले के सूखने, रोग तथा मद से वाणी का खंडित हो जाना।

8. **'प्रलय'**- श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, चोट तथा मोह मे चेष्टाहीन हो जाना।

संचारी भाव

संचारी भाव का तात्पर्य उन भावों से है जो हृदय में पानी के बुलबुले के समान उठते और खत्म होते रहते हैं। एक तरह से यह भाव तात्कालिक रूप से बनते हैं और मिटते रहते हैं। इनकी संख्या 33 मानी गई है- निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, देन्य, चिंता, मोह, स्मृति, घृति, ब्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अविहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, वितर्क।

4.5 नाट्य में सात्विक अभिनय का महत्व

सामान्य अभिनय की चर्चा करते हुए उन्होने कहा है कि सामान्य अभिनय मे 'सत्व' पर अधिक बल देना चाहिए क्योकि सम्पूर्ण नाट्य प्रदर्शन में 'सत्व' की मौलिक महत्ता है। नाट्य लोकधर्मी है और उसमें लोक चरित्रों का अनुकरण होता है। इसलिए सत्व का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है। सत्व के आधार पर ही भरत ने अभिनय को श्रेष्ठ, मध्यम और अधम श्रेणी में बांटा है। जब अभिनय में सात्विक अभिनय की प्रबलता होती है तो वह अभिनय श्रेष्ठ कहा जाता है। यदि सात्विक अभिनय सामान्य हो तो अभिनय 'मध्यम' और जब सात्विक भाव निम्न हों तो अभिनय अधम कहा जाता है। ऐसे में हम अभिनय में सात्विक अभिनय को प्रमुख कह सकते हैं। यही अभिनय दर्शकों में रस की उत्पत्ति को नियंत्रित करता है।

सात्विक अभिनय का संबंध अनुभाविक क्रिया से है अर्थात वे क्रियाएँ जो भाव का अनुसरण करें। इसके अंतर्गत वाचिक, आंगिक और आहार्य की क्रियाएँ निहित हैं और यही भाव को अनुभूति योग्य बनाती हैं। रोमांच, अश्रु और वैवर्ण्य जैसे सात्विक भावों का अनुकरण बिना मन के नही किया जा सकता। नाटक मे लोकस्वभाव के अनुरूप ही 'सत्व' अपेक्षित है। आगे वे इसी संदर्भ मे कहते हैं कि नाट्य प्रयोग के समय नाट्यधर्म मे प्रवृत्त सुख दुःख के भावों को इस प्रकार सात्विक भावों से उत्पन्न होने वाला बतलाना चाहिए कि वे यथार्थ स्वरूप वाले प्रतीत होने लगे। इस दुःख भाव को जो कभी दुःखी न हुआ हो ऐसा सुखी प्रयोक्ता कैसे अभिनीत कर सकता है? इस संबंध मे यही 'सत्व' है जो कि अभिनेता दुःखी हो या सुखी हो उस अश्रु या रोमांच को अभिनय द्वारा प्रस्तुत करना होता है।

प्रत्येक दर्शक का अपना सुख दुख होता है। इसी प्रकार पात्र का भी अपना सुख दुख होता है। लेकिन देशकाल व परिस्थिति विशेष में नाट्य प्रयोग के दौरान एकाग्र होने के कारण अभिनेता पात्र के सुख दुख को अपना मान लेता है। इसी के कारण अभिनेता पात्र के सुख दुख के साथ व्यक्तिगत सुख दुखों को व्यक्त कर रहा होता है किंतु प्रेक्षक को लगता है कि वह पात्र के सुख दुखों का अनुभव कर रहा है। प्रदर्शित किये जाने वाले भाव पात्र के हैं न कि नट के। सात्विक अभिनय का मूल मंत्र यही है।

सामान्याभिनय मे भी भरत ने अभिनय मे 'सत्व' की चर्चा की है। उन्होने इस अभिनय मे 'सत्व' पर अधिक ध्यान देने के लिए कहा है क्योंकि पूरे नाट्य प्रदर्शन में 'सत्व' की मौलिक महत्ता होती है। जिस अभिनय मे 'सत्व' का अधिक समावेश हो वह 'उत्तम', समान मात्रा में हो तो 'मध्यम' तथा सत्व रहित अभिनय 'अधम' समझा जाना चाहिए। अतएव स्पष्ट है कि भरत ने चारों प्रकार के अभिनय मे सात्विक को अभिनय की श्रेष्ठता व निपुणता का आधार माना है।

4.6 चित्राभिनय

चित्राभिनय का संबंध विशेष रूप से आंगिक अभिनय से ही है इसीलिए भरत ने इसे अलग से अभिनय के मुख्य भेदों में नहीं रखा है। चारों अभिनय भेदों के समन्वित रूप में आंगिक चेष्टाओं को प्रमुखता देते हुए ही उन्होंने चित्राभिनय' का निरूपण किया है। इस अभिनय प्रकार मे अंग विशेष की मुद्राओं का कुछ ऐसा संयोजन किया जाता है जिससे मनोरम चित्र के प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए इसे चित्राभिनय कहा गया है। इसके वर्णन में भरत ने प्रतीकात्मक मुद्राओं की चर्चा की है। जिससे किसी प्राकृतिक दृश्यों (दिन, रात), भूमिगत पदार्थों, सूर्य, अग्नि, मानवेतर प्राणी जैसे-सिंह, रीछ आदि वन्य पशु, विशेष गतियों, विशिष्ट मनोदशा आदि का ज्ञान कराया जा सकता है।

इसके अंतर्गत विभिन्न प्राकृतिक परिदृश्यों का प्रभाव चित्राभिनय के माध्यम से दर्शकों की कल्पना में जगाने का विधान भरत बतलाते हैं। दोनों हाथों को पताक मुद्रा में सीधे स्वास्तिक करें, उद्वाहित रूप में मस्तक पर रखकर ऊपर विभिन्न दृष्टियों से देखने पर इनके द्वारा-प्रभाव, रात्रि, प्रदोष, ऋतुएं, बादल, वनांत प्रदेश, विस्तीर्ण जलाशय, दिशाएँ तथा ग्रह, नक्षत्र को बताया जा सकता है। इसी मुद्रा को मस्तक के नीचे झुकाकर रखने पर भूमि पर रखे वस्तु को दिखाया जा सकता है। चांदनी, सुख, वायु, रस तथा सुगंध को बतलाने के लिए स्पर्श के साथ इसी मुद्रा वाले हाथ को ऊपर हिलाते हुए दिखा सकते हैं। इसी प्रकार क्रमशः सूर्य, अग्नि, दोपहरी का सूर्य, सुख-दु:ख देने वाले पदार्थ, गंभीर तथा उदात्त भाव, हार-माला, सर्वज्ञता के भाव, विद्युत उल्का आदि के प्रदर्शन की विशिष्ट मुद्राओं की चर्चा भरत ने की है।

ऋतुओं को प्रदर्शित करने की भी विशिष्ट मुद्राएँ भरत बतलाते हैं। हेमंत ऋतु के संदर्भ में वे बताते हैं कि उत्तम तथा मध्यम पात्रों के द्वारा अपने अंगों को झुकाने, सिकुड़ाने तथा सूर्य,

आग के साग्रह सेकन करने के अभिनय द्वारा हेमंत ऋतु को प्रदर्शित किया जाय। इसी प्रकार वे क्रमश: शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, वर्षा ऋतु की रात, सामान्य ऋतुओं के प्रदर्शन की विधियाँ बताते हैं।

इसी क्रम में वे पुरुष तथा महिलाओं की अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार आंगिक क्रियाएँ करने की योजना बताते हैं। हर्ष, विषाद, क्रोध, भय, मद, आदि में की जाने वाली क्रियाओं का भी भरत निरूपण करते हैं। आगे वे पशु-पक्षी, भूत, पिशाच, पर्वत तथा ऊँचे वृक्ष, सागर, आदि के प्रदर्शन की भी विधियाँ बतलाते हैं।

4.7 दर्शक और रस

जब भी दर्शक किसी प्रेक्षागृह में नाटक के प्रदर्शन का आस्वादन करने पहुंचता है तो उस समय उसके हृदय में तरह-तरह के सांसारिक जीवन के मनोविकार उमड़ते रहते हैं। वह दर्शक दीर्घा में अपना स्थान ग्रहण करता है। नाट्य प्रस्तुति आरंभ होती है। थर्ड बेल के साथ ही दर्शक का चित्त अपने सांसारिक जीवन से खिंचकर प्रस्तुति पर केन्द्रित हो जाता है। नाट्यारंभ का पहला संगीत दर्शकों को भावनात्मक रूप से प्रस्तुति से जोड़ देता है। अभिनेता मंच पर अभिनय करते हैं, विविध प्रकार से सुरों के उतार-चढ़ाव के साथ संवाद कहते हैं, गायक दल द्वारा गायन-वादन होता है और उस संगीत पर अभिनय कर्म होता है। ऐसे में दर्शक मंच पर स्थित चरित्रों के साथ अपना 'स्व' स्थापित कर लेता है। चरित्र के हँसने, रोने, दुखी होने, हर्षोल्लास में में नृत्य के साथ दर्शक भी हंसते हैं, रोते हैं, दुखी होते हैं और नाचते हैं। इस प्रक्रिया में दर्शकों के मनोविकार चरित्र की क्रियाओं के साथ ही तिरोहित हो जाते हैं। तभी तो दुख के दृश्य को देखकर दर्शक की आँखों से आँसू निकलने लगते हैं और उनका मन हल्का हो जाता है। इस पूरे विरेचन प्रक्रिया में संगीत इस भावनात्मक जुड़ाव की प्रक्रिया को बढ़ाकर दर्शकों भावनाओं को उच्च स्तर पर ले जाता है जहाँ दर्शक के मन के विकार तिरोहित हो जाते हैं और उसे ब्रहमानंद की अनुभूति होती है। उसका मस्तिष्क नाना प्रकार के तनावों से मुक्त हो जाता है। अरस्तू का 'विरेचन सिद्धांत' और भट्टनायक का 'साधारणीकरण सिद्धांत' इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

पाठगत प्रश्न 4.2

1. आचार्य भरत ने कितने प्रकार के भाव बतलाए हैं?

....

2. स्थायी भाव क्या है?

....

3. विभाव से क्या तात्पर्य है?

....

4. आलंबन विभाव क्या है?

....

5. उद्दीपन विभाव क्या हैं?

....

6. अनुभाव से क्या तात्पर्य है?

....

7. अनुभाव के कितने प्रकार हैं?

....

8. सात्विक भाव कौन-कौन से हैं?

....

9. संचारी भाव क्या है?

....

10. स्तम्भ सात्विक भाव क्या है?

....

आपने क्या सीखा

- सात्विक अभिनय का संबंध उस अभिनय से है जिसमें सात्विक भावों की प्रधानता होती है।
- नाट्य मे 'सत्व' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- जिस अभिनय मे 'सत्व' प्रधान हो वह 'उत्तम', समान हो तो 'मध्यम' तथा सत्व का अभाव हो तो उस अभिनय को 'अधम' समझा जाना चाहिए।

- किसी भी प्रस्तुति की सफलता व असफलता का मानक रस है। रस ही आनंद का पर्याय है। आचार्य भरत छठवें अध्याय में रस का चित्रण करते हैं।

- नाट्य में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत नामक अष्टरसों पर प्रकाश डालते हैं।

- अभिनेता मंच पर इन्हीं भावों का प्रदर्शन करता है। भाव अभिनय का एक महत्वपूर्ण कारक है।

- सातवें अध्याय में इन्हीं भावों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। उनके पाँच प्रकार, आठ स्थायी भाव, तैतीस संचारी भाव व आठ सात्विक भावों आदि पर विमर्श है।

- आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार की चर्चा करते हैं। इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना करते हैं।

- विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिश्पत्तिः। अर्थात विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ स्थायी भाव के योग से रस की निश्पत्ति होती है।

- अभिनेता के लिए सफल होने के लिए यह आवष्यक है कि वह अपने सत्व से अभिनय करे।

प्रायोगिक प्रश्न

1. सात्विक अभिनय से आप क्या समझें?
2. सात्विक भाव कौन-कौन से हैं? सत्व का प्रयोग करते हुए अभिनय करके दिखाएं।
3. रस और भाव क्या हैं? विभिन्न रसों के अनुरूप सात्विक अभिनय करके दिखाइए।
4. रस और सात्विक भाव का क्या संबंध है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. सात्विक का संबंध 'सतोभाव' से है जिसका तात्पर्य सत्व के होने से है।

टिप्पणी

2. नाट्य प्रदर्शन को देखकर दर्शकों को जिस आनंद की अनुभूति होती है वह रस है।

3. आचार्य भरत ने आठ रसों की चर्चा की है- श्रृंगार, हास्य, करुण रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक, अद्भुत

4. विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिश्पत्तिः।

5. हृदय में उठने वाली अनुभूतियों, संवेगों और नाना प्रकार की मनोदशा को भाव कहते हैं।

6. श्रृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स

7. नायक नायिका के मिलन के दृश्य को देखकर जिस रस का आनंद प्राप्त होता है वह संयोग श्रृंगार है।

8. किसी पात्र के विकृत वेश, अलंकार, निर्लज्जजता, लालचीपन, असंगत भाषण और अंगों के विकृत रूप आदि के प्रदर्शन के द्वारा यह उत्पन्न होता है

9. उत्तम प्रकृति और उत्साह नामक स्थाई भाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है स्थिरता धैर्य शूरवीर का त्याग और निपुणता आदि अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है।

10. आश्चर्यचकित कर देने वाले दृश्यों को देखकर अद्भुत रस की अनुभूति होती है।

4.2

1. स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

2. स्थायी भाव का अभिप्राय उन भावों से है जो दर्शकों में स्थायी भाव से निवास करते हैं।

3. विभाव का अभिप्राय उन भावों से है जिनके कारण स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं।

4. आलंबन वह है जिसके लिए स्थाई भाव उत्पन्न होता है।

5. उद्दीपन का तात्पर्य उन भावों से है जिन से स्थाई भाव की उत्पत्ति को बढ़ावा मिलता है।

6. वे भाव जिनके द्वारा रति आदि भावों का अनुभावन होता है वह अनुभाव

टिप्पणी

कहलाते हैं। अनुभाव एक तरह से मन में स्थित आंतरिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति की तरह होते हैं।

7. अनुभाव के चार प्रकार हैं- कायिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक।

8. स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु तथा प्रलय

9. संचारी भाव का तात्पर्य उन भावों से है जो हृदय में पानी के बुलबुले के समान उठते और खत्म होते रहते हैं।

10. क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दु:ख, श्रम आदि के कारण आंगिक संचालन का जड़ हो जाना 'स्तम्भ' है।

माड्यूल-8

नाट्य का प्रायोगिक पक्ष

इस मॉड्यूल में रंगमंच की तकनीकों को बताया गया है, साथ ही मुद्रा राक्षस नाटक के प्रायोगिक पक्ष के माध्यम से नाट्य के प्रायोगिक पक्ष को बताया गया है।

5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय

6. मुद्राराक्षस

टिप्पणी

5

रंगमंच तकनीकः एक परिचय

पूर्व में हमने रंगमंच के बारे में जाना। रंगमंच क्या है? रंगमंच की उत्पत्ति कैसे हुई? रंगमंच के कितने प्रकार हैं? इत्यादि। अब इस अध्याय में हम रंग तकनीक के बारे में चर्चा करेंगे। शीर्षक से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका संबंध रंगमंच में प्रयुक्त किये जाने वाले तकनीकों से है। यदि आपने कोई नाटक देखा है तो उसकी कल्पना कीजिए। सोचिए कि आपने उस नाटक में अभिनेता के इर्द-गिर्द कौन-कौन सी चीजों को देखा है जो नाटक को और भी प्रभावी बना रहे थें। निश्चय ही आप उन चीजों में सेट, लाइट, साउंड उपकरण को देखेंगे। वास्तव में इन्हें ही रंगतकनीक के नाम से जाना जाता है। यह सभी नाटक के अनुरूप प्रयोग किये जाते हैं।

रंगमंच की कई प्रस्तुति शैलियाँ हैं जिनके विषय में हमने पूर्व में चर्चा की है। प्रत्येक शैलियों में इन तकनीकों-सेट, लाइट और ध्वनि को एक विशेष तरीके से प्रयोग किया जाता है। इन रंग तकनीकों का कार्य अभिनय को विशेष प्रभाव प्रदान करना होता है। भारतीय रंगमंच हो अथवा पश्चिमी रंगमंच दोनों की ही प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न है। इसी भिन्न स्वरूप के साथ ही इन दोनों की रंगतकनीक भी भिन्न है। किंतु आधुनिक रंगमंच के साथ ही दोनों रंगमंच का मिलन दिखाई देता है। इसी के साथ ही रंगतकनीकों पर भी इसका गहरा असर पड़ा जिसकी चर्चा भी हम करेंगे।

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- रंगमंच तकनीक का सामान्य परिचय जानते हैं;
- रंगमंच की तकनीक की प्राचीन विधाओं को जानते हैं;

- रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं को जानते हैं;
- रंगसज्जा का नाट्य प्रस्तुति में महत्व को जानते हैं;
- नाट्यमंचन में प्रकाश और ध्वनि के महत्व को जानते हैं; और
- प्रकाश-ध्वनि प्रस्तुति के विभिन्न प्रकारों को जानते हैं;

5.1 रंग-तकनीक का सामान्य परिचय

रंगमंच दृश्य-श्रव्य माध्यम है। जब एक दर्शक किसी नाटक को देखने जाता है तो वह मंच पर घटित होने वाली घटनाओं को स्पष्ट रूप से देख व सुन सके। एक सफल नाट्य प्रस्तुति के लिए आवश्यक है कि रंगतकनीकों पर विशेष रूप से कार्य किया जाय। ये रंगतकनीक न केवल नाटक को रोचक और प्रभावी बनाते हैं बल्कि यदि इनका प्रयोग एक विशेष दृष्टि के साथ किया जाय तो ये नाटक के अर्थों को एक नया आयाम भी देते हैं जो अक्सर नाटक में ही छिपा रहता है।

जब हम रंगतकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप। और तकनीक अर्थात व्यवहार का वह तरीका जो आसानी से परिकल्पना को साकार कर दे। इस प्रकार रंगतकनीक के अंतर्गत उन सभी अवयवों के तकनीक का बोध होता है जिनके समन्वय से रंगमंच आकार लेता है।

नाट्यलेखन तकनीक

प्रायः रंगमंच की शुरुआत एक लिखित नाटक से होती है। नाटककार अपनी कल्पना से नाट्य लेखन करते हुए रंगमंच के सभी अवयवों के प्रयोग को निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए- मंच पर लाइट कब आएगी। अभिनेता कहाँ से मंच पर प्रवेश करेगा और कब, कहाँ की ओर प्रस्थान करेगा। यदि नाटककार स्वयं रंगमंच का कलाकार है तो वह रंग तकनीकों का प्रयोग बहुत ही सुंदरता से अपने नाटक में करता है। एक रचनात्मक नाटककार अपनी सर्जनात्मकता से रंगमंच पर तकनीकों के सहारे सफल नाटक का रोडमैप प्रस्तुत करता है।

निर्देशन तकनीक

नाटक का निर्देशन करते हुए निर्देशक भी प्रायः कुछ तकनीकों का प्रयोग करता है जिसका संबंध नाटक की प्रस्तुति से होता है। पूर्वाभ्यास के दौरान निर्देशक इन तकनीकों के माध्यम से अभिनेता के अभिनय को निर्देशित करता है। एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में वह कभी नाटककार की तकनीक को अपना लेता है तो कभी-कभी वह उसे नकार भी देता है। अक्सर हम देखते हैं कि कुछ प्रस्तुति लिखे गए नाटक से बिल्कुल भिन्न होती है या फिर नाटक

टिप्पणी

के अनछुए पहलुओं पर निर्देशक का पूरा फोकस होता है। ऐसे में निर्देशक एक भिन्न दृष्टिकोण से नाट्य तकनीकों का प्रयोग करता है।

प्रस्तुति तकनीक

जब हम नाटक देखते हैं तो प्रायः प्रस्तुति के दौरान कुछ तकनीकी वस्तुओं का प्रयोग पाते हैं। जैसे- लाइट उपकरण, सेट, साउंड उपकरण आदि। ये कुछ ऐसी चीजे हैं जो हमें प्रत्येक नाटक में देखने को मिलती हैं। नाटककार और निर्देशक द्वारा परिकल्पित दृश्य को ये तकनीकी उपकरण प्रस्तुति योग्य बनाने में महती भूमिका निभाते हैं। दृश्यों के मूड, टाइम, प्रभाव आदि के अनुरूप इन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

5.2 रंग-तकनीक की प्राचीन विधा

रंगतकनीक में पहला जरूरी तत्व दृश्य-बंध माना गया है। दृश्य नाटक के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करता है। मंच पर बनाए गए दृश्य बंध से दर्शकों को नाटक के वातावरण से परिचित कराया जाता है। दृश्य-बंध वास्तव में नाटक के लिए बने मंच पर प्रस्तुत एक ऐसा रूप है जो प्रायः नाटक में आदि से अंत तक रहता है। यह दृश्य-योजना का समन्वित रूप है। आधुनिक दौर में दर्शकों को पर्दा खुलते ही पृष्ठभूमि पर निर्मित, अंकित या किसी अन्य रूप में प्रस्तुत जो सेट नजर आता है, वही दृश्य-बंध है। इस दृश्य बंध को कैसे बनाया जाय? इस संबंध में समय-समय पर विचार-विमर्श किया जाता रहा है। मुख्य रूप से रंगतकनीक की प्राचीन विधाओं को समझने के लिए उन्हें दो वर्गों में बांटना होगा-

1. दृश्य-श्रव्य तकनीक और
2. आलोकन तकनीक।

दृष्य-श्रव्य तकनीक

जैसा कि हम जानते हैं कि रंगमंच दृश्य-श्रव्य माध्यम है। ऐसे में आदिम रंगमंच से लेकर प्रेक्षागृह उद्‌भव तक इसी माध्यम को लेकर विचार किया जाता रहा। दृश्यता व श्रव्यता को ध्यान में रखकर प्रेक्षागृह की कल्पना की गई। उदाहरण के लिए 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र प्रेक्षागृह के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर प्रकार बतलाए गए। इनमें से दृश्यता व श्रव्यता के आधार पर विकृष्ट मध्यम प्रेक्षागृह को श्रेष्ठ बतलाया गया। कुछ इसी प्रकार ग्रीक रंगमंच में पहाड़ों को काटकर बनाए गए रंगमंच के साथ ही मुखौटे (जिनमे ध्वनि विस्तार के लिए चोंगेनुमा व्यवस्था थी), गद्देदार जूते (ताकि अभिनेता का आकार बड़ा दिखे) आदि का प्रयोग मिलता है। हमें भारतीय और पश्चिम रंगमंच दोनो मे ही सीढ़ीनुमा दर्शक दीर्घा देखने को मिलती है।

टिप्पणी

मंच आलोकन

आदिम काल से 16वीं शताब्दी तक नाटकों की प्रस्तुतियाँ मुक्त आकाश के नीचे दिन में की जाती थीं। यूनानी नाटक बिना छत की रंगशालाओं मे प्रस्तुत किए गए। भारत में बौद्धों नें मुक्ताकाशी मंच पर अथवा फिर बिना छत की वर्गाकार रंगशालाओं में अपनी प्रस्तुतियाँ की। मध्ययुगीन कर्मकांडी नाटक, गिरिजाघरों के भीतर, जहाँ दिन की रोशनी खिड़की दरवाजो या झरोंखों से अंदर आती थी, अभिमंचित किए गए। कामेडीया-देल-आर्ते एवं आरंभिक एलिजबेथन काल के नाटकों के लिए कृत्रिम रोशनी की अवश्यकता ही नहीं थी। ऐसा माना जाता है कि जब ये नाटक उस समय मे होते थे तो कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था के बारे मे सोचा ही नहीं गया था।

अभी तक रंगमंच मे प्रकाश (कृत्रिम)नहीं आया था लेकिन ये अनुमान लगा सकते है कि जब आदिमानव रात को शिकार को पका कर खाते रहे होंगे। वे आदिम प्रस्तुतियाँ अलाव के इर्द-गिर्द हुई होंगी। जंगली जानवर आग से डरते थे और इसलिए आदि मानवों ने अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए रात का समय चुना। कुछ शोधकर्ताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रीक नाटक जानबूझकर धीरे-धीरे रात तक प्रदर्शित किए जाते थे, क्योंकि दिन में आग उतनी प्रभावी नही दिखती जितनी रात में । ऐसे नाटको मे हस्त सामग्री के रूप मे हमें जलती हुई मशालें, दीपक तथा रोशनी के अन्य स्त्रोतों का प्रयोग मिलता है।

तमिलनाडु और केरल के नाट्ड प्रदर्शनों के कुछ रूपों में आलोकन एक अन्य प्रकार के रोचक दीपकों से किया जाता है। नारियल के खोल को दो अर्धगोलाकार आकृतियों मे काटकर दीपक पात्र के रूप मे प्रयोग किया जाता है। इस तरह प्रकाश व्यवस्था की जाती है, जिसमें तेल भरने के लिए प्रदर्शन को बीच मे रोकना नहीं पड़ता था। यहाँ ष्स्ट्रीप लाइटष बांस कि बनाई जाती है। केरल के ही सुदूर ग्रामीण अंचल के रंगमंच ष्थैय्यामष में दूसरे प्रकार के आलोकन का प्रयोग होता है। यह प्रकाश उपकरण एक जलती हुई मशाल है जिसे सूखे नारियलों के पत्तों के साथ बनाया जाता है। प्राचीन पारंपरिक शैलियों जैसे नौटंकी, जात्रा, तमाशा, भवाई, यक्षगान, नाचा, माच आदि में इन मशालों का उपयोग होता था और यह आज भी जीवित है।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. रंगतकनीक से आप क्या समझते हैं?

....

2. नाट्यलेखन तकनीक से क्या अभिप्राय है?

....

टिप्पणी

3. प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त की जाने वाली तकनीक कौन-कौन सी हैं?

....

4. दृश्य-बंध क्या हैं?

....

5. प्रेक्षागृह की रचना में किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है?

....

6. नाट्यशास्त्र में किस रंगमंच को श्रेष्ठ बतलाया गया है?

....

7. ग्रीक रंगमंच में दृश्यता-श्रव्यता को ध्यान में रखकर क्या प्रयोग किया जाता था?

....

8. पश्चिम रंगमंच में कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग कब से मिलता है?

....

9. तमिलनाडु और केरल के नाट्यप्रदर्शनों में प्रकाश किससे किया जाता है?

....

10. स्ट्रीप लाइट कैसे बनाई जाती है?

....

5.2 रंग-तकनीक की आधुनिक विधा

रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है। जब तक नाट्य प्रस्तुतियाँ खुले में की जाती थीं तब तक इन सभी की आवश्यकता नहीं थी किंतु बंद प्रेक्षागृहों ने इन आवश्यकताओं को जन्म दिया। इन आधुनिक विधाओं का जन्म पश्चिम में मंच प्रकाश के साथ आरंभ हुआ।

प्रकाश व्यवस्था के क्षेत्र मे नया प्रयोग सर्वप्रथम इतालवी कलाकार श्सेबस्तीनों सरेलियो्र ने किया। सेबस्तीनों सरेलियो ने (1475-1554) वास्तुशिल्प एवं मंच के अलावा दृश्यमूलक

टिप्पणी

चित्र लगानें के विषय मे सोचा। इस जानकारी के साथ रोमन रंगमंच का अनुकरण कर आयताकार हॉल का निर्माण किया। सरेलेयो के अनुसार मंच की पृष्ठभूमि से लेकर 'विंग्स' और 'पैनल' से होते हुए रंगशाला मे रंगीन दृश्यवाली का निर्माण किया गया। इस विस्तार मे 'पर्सपेक्टिव' दृश्य सिद्धांतों और त्रिआयामी उपायो का प्रभावपूर्ण उपयोग किया गया था। इसके लिए उन्होने सामने की ओर से मोमबत्ती की रोशनी को बढ़ाने के लिए मोमबत्ती के सामने आईने, चमकती तश्तरियों छिछली थालियों का इस्तेमाल किया। रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बोतलों मे रंगीन तरल पदार्थ दल कर उन्हे जलती मोमबत्तियों के सामने रख कर उपयोग किया गया। इस प्रभाव को आगे बढाने मे अंग्रेज डिजाइनर इनिगो जोन्स (1573-1652) का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

कालांतर मे मोमबत्तियों के साथ-साथ तेल बत्तियों वाले लैंपो का भी इस्तेमाल किया गया, किन्तु इस तैरती तेल बत्तियों को प्रस्तुतियों के दौरान बार-बार काटने-छाटने की जरूरत पड़ती थी। इस काम के लिए 'गुल तराशों' को बार-बार मंच पर आना पड़ता था। कहा जाता है की 'फुटलाइट' शब्द की उत्पत्ति इन्ही तैरती तेल बत्तियों से हुई। आगे चलकर तेजरोशनी के लिए ज्योति को गैस अथवा बर्नरो से ढकने की प्रथा शुरू हुई।

धीरे-धीरे सरेलियो के बाद की अवधि में बेहतर प्रकाश व्यवस्था के लिए मोमबत्तियों और तेल बत्तियों के इस्तेमाल मे बेतहाशा वृद्धि हुई और उसका परिणाम ये हुआ की दर्शकों की आँख मे वो तेजऔर मुक्त रोशनी चुभने लगी। इस समस्या के समाधान हेतु इतालवी डिजाइनर निकोल सबातिनि (1574-1654) नें प्रयास किया। उसने प्रकाश के स्त्रोत को छुपाने का उपाय ढूँढ़ निकाला और वर्तुलाकार नली को ऊपर से नीचे की ओर बत्ती पर ओढ़ाकर या ढँककर प्रकाश स्त्रोत को छुपाने का का प्रयास किया। इसी प्रकार सुविख्यात अभिनेता व डिजाइनर 'डेविड गैरिक' (1717-79) का प्रयास भी उल्लेखनीय है।उन्होने फुट लाइट को मंच फर्श से थोड़ा नीचे खाँचेदार तल पर इस प्रकार रखा की मंच की तरफ ढलान और रंग शाला की तरफ चढ़ा हुआ था। इस प्रकार सबातिनी और गैरिक डेविड नें रोशनी को दर्शकों की आँख से बचाकर उसे प्रस्तुत करने मे बेहतर रोशनी हासिल करने मे कामयाबी हासिल की।

सन 1781 ई. गैस बत्ती का आविष्कार हुआ किन्तु रोशनी के लिए नए स्त्रोत का रंगमंच के लिए पहली बार इस्तेमाल सन् 1817 ई. मे हुआ।इस घटना को मंचीय आलोकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। अत: मंच आलोकन के विकास का दूसरा चरण प्रकाश की तीव्रता पर नियंत्रण था। मंचीय गतिविधियों मे बगैर किसी असुविधा के अपनी इच्छा अनुसार प्रकाश की तीव्रता को घटाया बढाया जा सकता था। इसे गैस टेबल मे जहाँ से नली या रबर की पाइपों से गैस बहती थी, से नियंत्रित किया जाता था। तीव्रता पर नियंत्रण पर कार्य हेनरी इरविंग(1838-1905) ने किया। जैसे प्रकाश को अलग-अलग स्थानों को प्रकाशित करना,रंगो का इस्तेमाल करना,प्रस्तुतियों के दौरान रंगशालाओ की बत्तियाँ बुझा देना आदि।

यांत्रिक बदलाव की इस समूची विकासात्मक प्रक्रियाओं मे प्रचलित या उसके बदले दूसरे उपकरण सहजता से प्रतिस्थापित होते गये। उदाहरण के तौर पर 1879 मे विद्युत प्रकाश अन्वेशित हुआ। अत: संक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि जैसे-जैसे मानव सभ्यता तथा तकनीकी विकास होते गए वैसे-वैसे आधुनिक उपकरणों का आविष्कार हुआ और मंच आलोकन की प्रक्रिया विकसित होती गई।

सन् 1909 मे सर हम्फ्री डैवी ने वृत्त प्रकाश का आविष्कार बिजली के रूप मे किया। पाँच वर्ष पश्चात एम.जे.डुबोसेक ने इसी वृत्त प्रकाश के अनेक महत्वपूर्ण उपकरणों जैसे बेबी लाइट, फ्रेजनल, हेलोजन, पेजेंट, फ्लड लाइट,पी.सी., प्रोफाइल, पार एक अतिरिक्त प्रभाव उत्पन्न करने हेतु इन उपकरणो का प्रयोग शुरू किया। अत: सन् 1900-1914 की अवधि मे मंच आलोकन जगत मे तेजी से यांत्रिक और कलात्मक बदलाव हुये।

वास्तव में आधुनिक रंगमंच मे प्रकाश व्यवस्था का अपना मनोविज्ञान है जो प्राचीन परंपरा से पर्याप्त रूप से विकसित है। अब तो मंहगे लाइट व साउंड उपकरणो के बिना नाट्य प्रस्तुतियों की कल्पना ही नहीं की जा सकती। रंगकर्म को अगर सबसे ज्यादा प्रभावित किया तो वह है मंच आलोकन। इसका महत्व आज के रंगमंच के लिए उतना ही है जितना एक अभिनेता और निर्देशक का। आधुनिक युग मे प्रकाशीय उपकरणो मे नियंतर प्रयोग जारी है।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. रंगतकनीक की आधुनिक विधाएँ क्या हैं?

   ....

2. प्रकाश व्यवस्था में पहला प्रयोग किसने किया?

   ....

3. रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए क्या किया जाता था?

   ....

4. गैस बत्ती का प्रयोग कब किया गया?

   ....

5. एम.जे. डुबोसेक ने मंच आलोकन मे क्या प्रयोग किया?

   ....

टिप्पणी

5.3 रंग-सज्जा

नाट्य प्रस्तुति वास्तव मे लेखक की कहानी को दर्शकों के लिए मंच पर पुनः सृजन का कार्य करती है। इस दृष्टिकोण में क्रिया अथवा कार्य व्यापार सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है जो केवल शारीरिक गतिशीलता अथवा मात्र संभाषण ही नहीं होता अपितु अभिनय की आत्मा नाटकीय गतिशीलता में निहित होता है। यह लयबद्ध संभाषण एवं शारीरिक मुद्राओं के माध्यम से नाट्यालेख को मंच पर जीवंत रूप से साकार कर देता हैं। इसमें कई अन्य सहयोगी कलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। उनमें रंगसज्जा प्रमुख है जो नाट्यक्रिया का वातावरण तैयार कर प्रस्तुति को विकसित एवं समृद्ध करती है।

यदि ध्यान से देखा जाय तो आज रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ़् तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दों, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशो प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधि क विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं- मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि रंगसज्जा का प्रमुख कार्य मंच पर उपस्थित समस्त भौतिक एवं आभासीय तथा विशेष व साधारण तरीके से सहायता प्रदान करना होता है।

रंग-सज्जा का कार्य

वातावरण निर्माण के रूप में रंगसज्जा के तीन प्रमुख कार्य निर्धारित किये जा सकते हैं-

1. नाट्य का स्थल निर्धारण
2. नाट्य क्रिया में अभिवृद्धि
3. नाट्य क्रिया को अलंकृत करना, उसे रोचक बनाना।

रंग सज्जा का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करना तथा घटना स्थल की उपयुक्त एवं स्पष्ट पहचान स्थापित करना है। प्रेक्षागृह का पर्दा खुलनें के बाद दर्शक सबसे पहले दृश्य सज्जा का ही अवलोकन करती है। इससे वह सहज ही अनुमान लगा लेती है कि संपूर्ण नाटक का घटना स्थल युद्धभूमि है,घर का अतिथि कक्ष है।

यह रंगसज्जा नाट्य चरित्रों के व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित कर नाट्य क्रिया को प्रभावी बना सकता है। उदाहरण के लिये एक कमरे का सामान्य दृश्य, उसमें रहने वाले व्यक्तियों की रूचि एवं आदतों को दिखताा है। चरित्र जिस प्रकार अपनें कमरों को साफ सुथरा अथवा बिखरा हुआ रखते हैं, जिस प्रकार का रंग दीवार पर लगाते हैं, जिस तरह की कुर्सी पर बैठते हैं या जिस

प्रकार के बर्तन, उपकरण तथा अन्य वस्तुओं का उपयोग करते हैं,उससे उनके वास्तविक जीवन की झलक एवं उनके वास्तविक चरित्र का संकेत मिलता है।

रेखाओं, रंगों एवं अन्य तत्वों के माध्यम से रोचक संयोजन बनाकर रंग सज्जा द्वारा आकर्षक एवं अर्थपूर्ण पृष्ठभूमि का निर्माण किया जा सकता है। यदि रंगसज्जा आकर्षित नहीं करता तो इसे नाट्य क्रिया का उपयुक्त वातावरण नहीं कहा जा सकता।

रंग-सज्जा के प्रकार

साधारणतया नाट्यगृहों में उपलब्ध स्थान एवं उपकरणों की सुविधाओं के आधार पर दृष्य सज्जा का स्वरूप निर्धारित किया जाता है, परंतु दृष्य विन्यासकर्ताओं तथा तकनीकी कर्मकारों के लिए सर्वप्रथम नाट्यालेख का अध्ययन करना आवष्यक होता है जिसके आधर पर ही प्रस्तुति विषेश के लिए दृष्य सज्जा के स्वरूप को निष्चित किया जा सकता है। इसके लिए पहले दृष्य विन्यास के विभिन्न स्वरूप को जानना आवष्यक है–

अंतरंग सज्जा (Box set)

यह आधुनिक रंगमंच में निर्देशक एवं विन्यासकर्ताओं का सर्वाधिक लोकप्रिय विन्यास स्वरूप है। इस तरह की दृष्य सज्जा में तीन ओर की दीवारें सामान्यत: एक वास्तविक कमरे का बेहतर प्रतिनिधित्व करती हैं। 19वीं शताब्दी तक अंतरंग सज्जा को प्राय: पृश्ठभूमि को रंगकर बनाया जाता था परंतु निष्चित स्थान से आती हुई प्रकाष किरणों से रेखांकित इस दृष्य सज्जा में तृतीय आयामक का सर्वथा अभाव रहता था। यह पुनर्जागरण काल में प्रचलित खिसकाये जाने वाले चित्रित पर्दों के विकास का ही अंतिम रूप थी। 19वीं षताब्दी के उत्तसार्ध में इसने वर्तमान रूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार के दृष्य सज्जा का प्रयोग प्राय: यथार्थवादी नाटकों के लिए किया जाता रहा है जिसमें घटनास्थल कमरे का होता था। उदाहरण के लिए मोहन राकेश कृत 'आधे अधूरे' या फिर इब्सन का 'गुड़ियाघर'। इन नाटकों के मंचन की प्रक्रिया में इस दृष्यनिर्माण की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

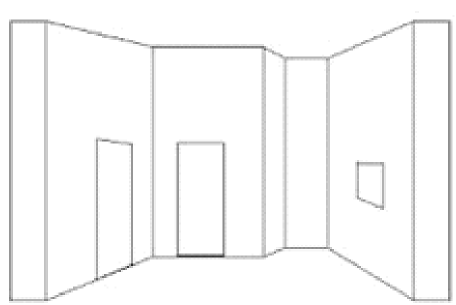

Box Set

टिप्पणी

बाह्य सज्जा (The Exterior Setting)

इस प्रकार की सज्जा में प्रायः पूरे मंच क्षेत्र का उपयोग कर लिया जाता है। दृश्य दिखलाये जाने क्षेत्र पर सेट लगाने से पहले पार्श्व मंच के हिस्सों को पूरी तरह मास्क कर दिया जाता है ताकि यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करनें में कोई अवरोध उत्पन्न न हो।

पर्दों का प्रयोग (Drop and Wing Setting)

संगीत नाट्य, बैले, ओपेरा में इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग देखनें को मिलता है। पुर्नजागरण काल में विकसित इन चित्रित पर्दो का प्रयोग भारतीय रंगमंच के पारसी रंगमंच में भी दिखता है। वर्तमान में हम रामलीला में भी इन्हीं चित्रित पर्दों के सहारे मंचन देख सकते हैं।

लघु इकाई सज्जा (Unit Setting)

20 वीं शताब्दी के आरंभ में अचानक लोकप्रिय हुई इस दृश्य सज्जा नें चित्रित पर्दो को प्रचलन से बाहर कर दिया था। इसका मुख्य कारण दृश्य इकाइयों के हल्के होने के बावजूद त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न करना था। इनका भौतिक स्वरूप ही दर असल त्रिआयामी होता था। किंतु इसमें दृष्य परिचर्तन स्थापित करनें के लिए एक दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया जाता है।

टिप्पणी

आधारगत सज्जा (Skeleton Setting)

इसमें एक या अधिक फ्रेम का उपयोग कर प्रस्तुति विशेष में संपूर्णता का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। यह एक प्रकार का स्थायी फ्रेम होता है जिसे मंच पृश्ठ पर स्थित दृष्य परिवर्तन न्यूनाधिक स्प से प्रभावित कर सकते हैं परंतु मंचाग्र पर घटित नाट्य क्रिया में व्यवधान उत्लन्न नहीं होता है। इस प्रकार के फ्रेम विशेष रूप से उन नाट्य प्रसतुतियों के लिए सर्वाणिक सुविधाजनक होते हैं जिनमें अपेक्षाकृत अधिक घटनास्थल होते हैं।

न्यूनतम दृष्य सज्जा (Minimum Scenery)

साधारणतया अल्प वित्तीय साधनों एवं मंचपार्श्व की सीमाएँ अधिकांष नाट्य समूहों को न्यूनतम दृष्यसज्जा के लिए बाध्य करती है। इसके अनेक स्वरूप प्रचलित हैं-

अ) कट-डाउन दृष्य सज्जा

इसमें विभिन्न दृष्य इकाइयाँ ऊँचाईकी दृश्टि से सामान्य न होकर कम होती है। दीवारों की उंचाई का निर्धारण कमरे के स्थापत्य को चिन्हित करनें वाली विभिन्न वस्तुओं के आधार पर किया जाता है। जैसे- खिकियाँ, दरवाजे आदि।

ब) चयनित सज्जा (Selective setting)

इसे कभी-कभी आभासीय दृष्य सज्जा भी कहा जाता है। इसमें काले पर्दो की पृष्ठभूमि लगाई जाती है। परंतु केवल एक या दो दीवारों के छोटे खंडों का प्रयोग कर दीवार का आभास कराया जाता है।

स) खंडित स्वरूप दृश्य सज्जा (Fragmentary setting)

इसमें दृश्य इकाईयों के निर्माण की अपेक्षा उन्हें चित्रित करनें पर विशेष बल दिया जाता है। इस दृश्य सज्जा में अनेक दीवारों को दिखाया जाता है। किंतु इनकी उंचाई अनियमित होती है।

टिप्पणी

द) समानांतर सज्जा (Simultaneous setting)

यह शैली मध्यकालीन यूरोपीय रंगमंच में विकसित हुई थी जिसके अंतर्गत एक ही मंच पर नाट्यक्रिया के विभिन्न घटना स्थलों को अलग-अलग क्षेत्र में निर्धारित कर दिया जाता है, तदनुसार सक्रिय क्षेत्र प्रकाशित हो जाता है। एक साथ अनेक घटनास्थल मंच क्षेत्र में दिखलाई पते हैं

रंग-सज्जा की प्रक्रिया

रंगसज्जा की प्रक्रिया के संबंध में कोई निश्चित नियम नही है। हर विन्यासकर्ता की अपनी अलग प्रक्रिया हो सकती है। किंतु प्रत्येक प्रक्रिया में कुछ तत्व समान होते है। जिनका ध्यान अवष्य रखा जाना चाहिये-

1. नाट्यालेख का विश्लेषण एवं उसकी व्याख्या।
2. प्रस्तुति में कार्यरत सदस्यों के साथ विचार-विमर्श। यह निम्न बिंदुओं पर होनी चाहिये-
   - निर्देशक की आवश्यकता
   - प्रस्तुति के लिए चयनित शैली
3. नाट्य प्रस्तुति की तकनीकी आवश्यकताएँ
   - दृश्यों की संख्या
   - एक दृश्य से दूसरे दृश्य में परिवर्तन की समस्या
   - अभिनेता की आवश्यकता
4. मंच क्षेत्र एवं उपलब्ध सुविधाएँ
   - मंच क्षेत्र का आकार एवं वहाँ पर उपलब्ध सुविधाएँ
   - भंडारण स्थान
   - स्थानांतरण सुविधा
   - प्रकाश उपकरण एवं संचालन की सुविधा
5. दृष्टि रेखाएँ
   - दर्शक दीर्घा एवं मंच क्षेत्र का अंतर्संबंध

टिप्पणी

- लंबवत दृष्टि रेखा
- क्षैतिजीय दृष्टि रेखा

6. शोध कार्य
   - शोध सामग्री जिस पर विन्यास आधारित है।
   - नाट्य क्रिया की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
7. रेखाचित्र एवं लघु आकारीय मॉडल
8. विन्यासकर्ता की योजना
   - धरातलीय योजना (Ground plan)
   - सम्मुख दृष्य (Front elevation)
   - विस्तृत रेखाचित्र (Detail drawing)
   - संपूर्ण विस्तृत रेखाचित्र (Full scale detail drawing)
9. सामग्री का चयन
   - मंच सामग्री
   - हस्त सामग्री
   - अलंकरण सामग्री
10. दृश्य रंगन

    तैयार दृश्य सज्जा को अलंकृत करना एवं अंतिम स्वरूप देना।

पाठगत प्रश्न 5.3

1. रंगसज्जा क्या हैं?

   ....

2. रंगसज्जा से स्थल का निर्धारण कैसे होता है?

   ....

3. रंगसज्जा के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

....

4. रंगसज्जा को किन तत्वों के माध्यम से रोचक बनाया जाता है?

....

5.4 रंगमंच में प्रकाश

रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रस्तुत बनानें में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच मे अभिनय, मंचपरिकल्पना, रूपसज्जा, निर्देशन, वस्त्रसज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होनें के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखरती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है,चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

रंगमच को अगर सबसे ज्यादा प्रभावित किया है तो प्रकाश ने। अत: हम कह सकते है की आज के नाटकों मे जितना महत्व अभिनेता एवं निर्देशक का है उतना ही महत्व प्रकाश या प्रकाश व्यवस्था का भी है। मंच आलोकन अब नाट्य प्रस्तुति के लिए अनिवार्य शर्त बन गया है।

रंगमंच में प्रकाश का उद्देश्य

किसी भी नाटकीय प्रस्तुति मे प्रकाश के उद्देश को मुख्यरूप से 5 भागो मे बांटा जा सकता है, इसका वर्णन इस प्रकार है–

दृश्यता

प्रकाश व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण है, दृश्यता अर्थात मंच पर होने वाली घटना को दर्शकों तक पहुँचना। दृश्य का भाव दर्शको को चेहरा दिखाना बस नहीं है बल्कि मंच पर वांछित प्रकाश का होना आवश्यक हैताकि दृश्य दर्शकों की समझ मे आ सके।

विश्वसनीयता

नाटक मे होने वाली प्रकाश व्यवस्था विश्वास करने योग्य होनी चाहिए ताकि उसके दृश्यों से दर्शक संबंध जोड़ सके कई बार दृश्य के भावों के विपरीत लाइटिंग होनें से दर्शकों को वह दृश्य समझ मे ही नहीं आता।

टिप्पणी

प्लास्टिक क्वॉलिटी

मंच पर दिखाने वाले दृश्यों मे क्वालिटी होनी चाहिए। इसे 3डी क्वालिटी भी कहते है। यह प्रकाश व्यव्स्था इस तरीके से होनी चाहिए की अभिनेता, सेट, प्रॉपर्टी आदि को 3डी रूप मे दिखा सकें ताकि दर्शकों को दृश्य और भी स्पष्ट दिखाई दे।

कंपोजिशन

नाटक मे दृश्य के माध्यम से कंपोजिशन बनाना प्रभावी होता है। जिस प्रकार निर्देशक ब्लॉकिंग के माध्यम से तरह-तरह की composition बनाता ह, उसी तरह से लायटिंग मे भी composition बनाया जाता है। चूंकि नाटक दृश्य और श्रव्य प्रधान है, इसलिए दृश्य बनानें में compositio दबहुत प्रभाव पैदा करती है।

मूड

लाइट डिजाघइन में दृश्य के माध्यम से भावों को स्पष्ट किया जाता है। मूड या भावों को बनाने मे लाइट को कलर या इंटेंसिटी के माध्यम से बनाया जाता है। अत: लाइट का उद्देय मंच पर अभिनेता के साथ-साथ पूरे दृश्य के भावों या मूड को दिखाना होता है।

रंगमंच में प्रकाष नियंत्रण

रंगमंच पर प्रकाश का प्रयोग बहुत ही रचनात्मक तरीके से किया जाता है। यहाँ हम उन्हीं कुछ बिंदुओं पर चर्चा करने जा रहे हैं।

तीव्रता

तीव्रता अर्थात क्षमता।प्रकाश को नियंत्रित करने का एक माध्यम।इसके माध्यम से प्रकाश को कम या ज्यादा किया जा सकता है।जिससे दृश्यो पर बहुत असर पड़ता है इसे डिमर की सहायता से नियंत्रित किया जाता है।

रंग

इसका उपयोग हम मंच पर दृश्य को सुंदर बनाने के लिए करते है। जिस प्रकार सभी भावों का अपना एक रंग होता है। अधिकांशत: मृत्यु, वीभत्स, क्रोध के दृश्य मे लाल रंग का प्रभाव दिया जाता है। जैसे रात के लिए नीले रंग का उपयोग किया जाता है।

वितरण

मंच पर लाइट को कई हिस्सों में बांटा जाता है। दृश्यो के हिसाब से प्रकाश का वितरण किया जाता है। इसमें कंपोजिशन भी शामिल है। इसके लिए डिमर और कंसोल बोर्ड का उपयोग किया जाता है।

टिप्पणी

गति

मंच पर एक कोने पर हो रहे दृश्य से दूसरे कोने पर हो रहे दूसरे दृश्य पर फेडइन और फेडआउट के माध्यम से जाना ही प्रकाश की गति है इसके आलवा तीव्रता कम ज्यादा करना भी प्रकाश मूवमेंट है।

प्रकाश उपकरण

मंच पर प्रयुक्त की जाने वाले प्रकाष उपकरणों को उनके कार्य के अनुसार निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **फ्लड स्पहीज**

   इसके अंतर्गत मुख्य रूप से उन्हें रखा जाता है जिनका प्रयोग पूरे मंच को प्रकाषित करनें में किया जाता है। इसके प्रयोग से मंच के किसी एक क्षेत्र को प्रकाषित नहीं किया जा सकता है। इस वर्ग में हैलोजन, पार, स्ट्रिप, स्कूप लाइट, एल.ई.डी. लाइट्स आती हैं।

2. **स्पोट स्पहीज**

   ये लाइट उपकरण आलोकित करनें पर जिस दिषा में लटकाए गये हैं, मंच के उस क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं। ये प्रमुख रूप से मंच पर एक गोल घेरे का निर्माण करते हैं। कुछ लाइट्स द्वारा बने गोल प्रकाषवृत्त के किनारे स्पश्ट होते हैं और कुछ के अस्पश्ट। इस वर्ग में मुख्य रूप से पी.सी. स्पॉट, फ्रिजनल स्पॉट, प्रोफाइल, बेबी स्पॉट, फॉलो स्पॉट आदि रखे गए हैं।

3. **इफेक्ट स्पहीज**

   इनके अंतर्गत उन प्रकाश उपकरणों को रखा गया है, जो मंच पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करनें के लिए प्रायः उपयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए– साइक्लोरामा पर चाँद या विशेष आकृति बनानें के लिए या इफेक्ट प्रस्तुत करनें में आदि। इस वर्ग में मुख्यरूप से मूविंग हेड लाइट, यू.वी.लाइट, वाटर इफेक्ट, इफेक्ट प्रोजेक्टर, फॉग मशीन इत्यादि को रखा गया है।

प्रकाश विन्यास की प्रक्रिया

किसी भी नाट्य प्रस्तुति के लिए प्रकाष विन्यास करनें के पूर्व उपलब्ध उपकरणों के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। इससे आपको इस बात का ज्ञान हो जाएगा कि कब, कहाँ किस लाइट का प्रयोग करना है।

टिप्पणी

इसके बाद निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करें–

विन्यास कार्य शुरू करनें से पूवः

1. विन्यास का कार्यभार मिलनें के बाद दो संदर्भो में पूर्ण जानकारी अवश्य प्राप्त करें।

तकीनीकी उपलब्धता

- किन परिस्थितियों में नाट्य प्रस्तुति की जा रही है?
- क्या इसकी प्रस्तुति इसी मंच पर बार-बार होगी?
- प्रेक्षागृह कैसा है? वहां पर लाइट की स्थिति क्या है? क्या मंच पर लाइट फिक्स हैं अथवा कांउटरवेट पाइप का इस्तेमाल किया गया है?
- इलेक्ट्रिसिटी पावर सप्लाई में कोई समस्या तो नहीं है?
- यदि प्ले को अन्य कहीं प्रस्तुत किया जाता है तो क्या उपलब्धता होगी? या ये बाहर नहीं खेला जाएगा।

उपकरण

- क्या प्रेक्षागृह में स्वयं की लाइटें हैं?
- अतिरिक्त उपकरण की क्या उपलब्धता है?
- लाइट, डिमर, कंट्रोल की पूरी सूची प्राप्त करें।

समय सारिणी

- लाइट को लानें व सेट करनें में कितना समय लगेगा?
- प्रथम प्रस्तुति के पूर्व प्रकाष के लिए कितना समय होगा?

कार्यकर्ता

- आप किसके साथ कार्य करेंगे?
- कितनें इलेक्ट्रिषियन की आवष्यकता होगी?
- यदि संभव हो तो मास्टर इलेक्ट्रिषियन से मिलिए।

टिप्पणी

2. कलाकारों के साथ नाट्यालेख का अध्ययन कीजिए। द्वितीय अध्ययन के समय प्रकाष के संबंध में वर्णित उल्लेखों को नोट करते जाइए।

3. शोध- इस चरण में आलेख के संबंध में षोध करें। क्या है किसी अन्य देष का है? या यह किस षैली में प्रस्तुत किया जायगा? यदि इसकी मंच सज्जा किसी काल विषेश की है तो उसके भवन कैसे होंगे? इन सभी प्रष्नों के साथ निर्देषक से चर्चा करें।

4. आलेख का प्रकार- शैली क्या है? लेखक कौन है? क्या उसनें कुछ अलग आलेख भी लिखे हैं? इन सब के बारे में जानने का प्रयास करें।

5. आपके साथ कार्य करनें वाले निर्देशक या अन्य डिजायनरों के बारे में जाननें का प्रयास करें।

6. इन सभी बातों के साथ निर्देशक, दृश्य परिकल्पक आदि के साथ मीटिंग करें। उन्हें बताएं कि आप किस तरह डिजाइन करना चाहते हैं। उनकी राय लें।

7. अभ्यास के दौरान उपस्थित रहें। इससे आपकों निर्देशक का उद्देश्य व अभिनेता की कार्यप्रणाली का पता चलेगा। उस स्थान की यात्रा करें जहाँ पर सेट व कॉस्ट्यूम तैयार किया जा रहा है।

8. अभ्यास को ध्यानपूर्वक देखें। व इसके बाद निर्देषक से मिलें और उनसे खुलकर बात करें कि आप क्या सोचते हैं और कैसी परिकल्पना करना चाहते हैं?

9. लाइट प्लान- सभी जानकारी व निर्देषक से बातचीत करनें के बाद लाइट क्यू सीट बनाएं। क्यू सीट निर्माण से आपको प्रकाष संचालन में सुविधा होगी। कभी-कभी जब हम बिना कयू सीट के प्रकाष संचालन करते है तो ऐसे में हमें सभी क्यू याद नहीं रहते और हम सही समय पर संचालन नहीं कर पाते।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

....

2. प्रकाश के उद्देश्य क्या हैं?

....

टिप्पणी

3. रंगमंच में प्रकाश नियंत्रण के कारक कौन-कौन से हैं?

....

4. प्रकाश उपकरणों को कितने वर्गों में बाँटा गया है?

....

5.5 रंगमंच में ध्वनि तकनीक

नाटक के प्रभाव को तीव्र करनें के लिए ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि तकनीक से यहाँ तात्पर्य पात्रों की वाणी और संवादों के बोलने से उत्पन्न ध्वनि न होकर मंच पर संगीत या कुछ विषेश ध्वनियों से है जो वातावरण को बनाने में सहायक होती हैं। इसे ही रंगतकनीकमें ध्वनि प्रभाव कहा जाता है।

वैसे तो ध्वनि प्रभाव नाटक के पात्रों द्वारा प्रयुक्त संवाद से सर्वथा अलग ध्वनि है जो रंग-व्यापार में सहायक होती है। नाटक में शोकमय वातावरण उभारने के लिए नेपथ्य से वायलिन का दुखद संगीत, हर्षोल्लास दिखाने के लिये शहनाई, वीरता जाग्रत करनें के लिये नागाड़ा, तुरही आदि की संगीतमय ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं। इनसे रंग-व्यापार निश्चित रूप से अधिक प्रभावी होता हैं यदि इनका प्रयोग निश्चित समय पर निश्चित अनुपात मे किये जाए।

आकाशवाणी या कोई मायावी प्रभाव दिखाने के लिए विलक्षण ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रभाव में यह सतर्कता विशेष रूप से बरतनी पड़ती है कि ये ध्वनियाँ ऐसे निष्चित सुर में हों ताकि पात्रों के संवाद ठीक तरह से दर्शकों को सुनाई दें। साथ हि ये ध्वनियाँ ऐसी भी नहीं होनी चाहिये कि दर्शक का ध्यान मूल बिंदु से उठाकर कहीं और ले जाएँ। इनका संयमित निश्चित प्रयोग ही होना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि ये ध्वनियां मूल नाटक से ज्यादा आकर्षक होती हैं और नाटक का मर्म इनके कारण दब जाता है।

ध्वनि प्रभाव सभी प्रकार के रसों की सृष्टि करनें में सहायक होता है।श्रृंगार, शांत, हास, वीभत्स, अद्भुत आदि सभी का सृजन ध्वनि प्रभाव से हो सकता है। ये ध्वनि प्रभाव कई बार नाटक के दृश्य-परिवर्तन के सूचक भी होते हैं। संगीत की एक निश्चित धुन प्रत्येक परिवर्तन पर बजने से दर्शक को दृश्य-परिवर्तन की सूचना प्राप्त हो जाती है।

ध्वनि प्रभाव मंच पर प्रस्तुति के समय ही प्रस्तुत न करके पहले ही से रिकॉर्ड कर लिए जाते हैं। इससे पूर्वाभ्यासों में होने वाले व्यय में पर्याप्त कमी हो जाती है, साथ ही समय भी बच जाता है। टेप के द्वारा ध्वनियों को प्राकृतिक रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। बाजार के दृश्य में, किसी वास्तविक बाजार के हो-हल्ले का, वर्षा के दृश्य में प्राकृतिक वर्षा और बिजली की कड़क की रिकॉर्डेड ध्वनि पर्याप्त रंग-प्रभाव उत्पन्न कर देता है।

कई बार प्रस्तुति में पात्र होंठ ही हिलाता है और पार्श्व से ध्वनि उसके संवादों को प्रस्तुत करती हैं। यह भी प्रभावकारी है। आकाशभाषित (आकाषवाणी) कृष्ण की अति गंभीर वाणी को श्अंधायुग्र (निर्देशक अल्का जी) के पुराना किला, दिल्ली के मुकताकाशी मंच पर बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रसतुत किया गया था।

वैसे तो नाट्य प्रस्तुति में संगीत का जाने अनजाने प्रयोग होता ही है परंतु उसके साथ- साथ कभी-कभी विशेष प्रभाव उत्पन्न करनें के लिए अन्य ध्वनियों का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए- जहाज का टूटते हुए दिखाना मंच पर कठिन है पर इसी के स्थान पर जहाज टूटनें की ध्वनि से ही दर्षक इस दृश्य की कल्पना स्वयमेव ही कर लेते हैं। यह ध्वनि उस विशेष दृश्य के प्रभाव को और अधिक प्रभावी बना देता है।

ध्वनि के प्रकार

ध्वनि प्रभाव कृत्रिम अथवा मूल स्रोत से तैयार किया जाता है, जो कि चरित्र को प्रभावी बनाने एवं अन्य कार्य में प्रयोग किया जाता है। यह एक रिकॉर्डेड ध्वनि होती है जो कि मुख्य रूप से कथा कहने या फिर बिना संवाद या संगीत के रचनात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसका अधिकतर प्रयोग मोशन पिक्चर्स और टेलीविजन निर्माणों में किया जाता है। वस्तुतः संवाद, संगीत और ध्वनि प्रभाव अलग-अलग हैं।

ध्वनि प्रभाव मुख्यतः निम्न प्रकार की होती हैं-

1. यथार्थवादी ध्वनिप्रभाव
2. सांकेतिक ध्वनि प्रभाव
3. सामूहिक ध्वनि प्रभाव
4. प्रभाववादी ध्वनि प्रभाव
5. सांगीतिक प्रभाव

चूँकि नाट्य प्रस्तुति दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, अतएव ये आवश्यक है कि श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाना चाहिये। इस सम्मिश्रण में ध्वनि प्रभाव के तीन रूप दिखते हैं-

1. कठोर ध्वनियाँ

ऐसी ध्वनियां जो सामान्य रूप से दर्षकों तक पहुंचती हैं। इनके लिये रिकार्डेड ट्रैक की जरूरत नहीं पड़ती। यह मुख्यतः अभिनेता के कार्य व्यापार से उत्पन्न होती है। जैसे- अभिनेता का दरवाजे को जोर से पीटना।

टिप्पणी

2. वातावरणीय ध्वनि प्रभाव

ऐसी ध्वनियां जो दर्षकों को किसी विषेश परिस्थिति का आभास कराती हैं। जैसे- रात को दूर से आने वाली झींगुर की आवाजें।

3. फोले साउंड

चलते हुए अभिनेता के पैरों की आवाज आदि फोले साउंड के माध्यम से दी जाती हैं।

4. डिजाइन साउंड इफेक्ट

ऐसे ध्वनि प्रभाव जो किसी प्राकृतिक स्रोत से रिकॉर्ड नहीं किये जा सकते तथा इन्हें रिकॉर्ड करनें के लिए विषेश रूप से तैयार करना पड़ता है। जैसे- भविश्य में आने वाली मषीनों की आवाज या फेंटेसी के दृष्यों के लिए आदि।

इस प्रकार कई तरह की ध्वनि सामग्रियां नाट्य प्रस्तुति में प्रयुक्त की जाती हैं। ये ध्वनि प्रभाव कभी मूल स्रोत से अथवा कभी स्टुडियो में रिकॉर्ड किये जाते हैं। पर कभी-कभी कुछ ध्वनि प्रभावों को रिकार्ड करनें के लिए अग्रिम अनुमति लेनी पड़ती है।

पाठगत प्रश्न 5.5

1. रंगमंच में ध्वनि तकनीक से क्या तात्पर्य है?

....

2. श्रव्य के अंतर्गत नाटक में क्या-क्या तत्व होते हैं?

....

3. ध्वनि प्रभाव के कितने प्रकार हैं?

....

4. फोले साउंड क्या है?

....

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

- रंगमंच तकनीक के अंतर्गत रंगसज्जा, प्रकाश व्यवस्था व ध्वनि प्रभावों की तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

- जब हम रंगतकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप।

- आदिम रंगमंच से लेकर प्रेक्षागृह उद्भव तक इसी माध्यम को लेकर विचार किया जाता रहा। दृश्यता व श्रव्यता को ध्यान में रखकर प्रेक्षागृह की कल्पना की गई।

- आज रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ़ तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दों, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशो प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधिक विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं- मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं।

- रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है। जब तक नाट्य प्रस्तुतियाँ खुले में की जाती थीं तब तक इन सभी की आवश्यकता नहीं थी किंतु बंद प्रेक्षागृहों ने इन आवश्यकताओं को जन्म दिया। इन आधुनिक विधाओं का जन्म पश्चिम में मंच प्रकाश के साथ आरंभ हुआ।

- रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रस्तुत बनानें में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच मे अभिनय, मंचपरिकल्पना, रूपसज्जा, निर्देशन, वस्त्रसज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होनें के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखरती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है,चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

स नाट्य प्रस्तुति दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, अतएव ये आवश्यक है कि श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाना चाहिये।

प्रयोगिक प्रश्न

1. रंगमंच तकनीक से आप क्या समझते हैं।
2. रंगसज्जा की क्या भूमिका है?
3. रंगमंच पर प्रकाश व्यवस्था के बारे में आप क्या जानते हैं?
4. प्रकाश के कौन-कौन से उपकरण हैं?
5. प्रकाश विन्यास की प्रक्रिया बतलाइये।
6. ध्वनि तकनीक के संदर्भ में बतलाइये?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. जब हम रंगतकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप। और तकनीक अर्थात व्यवहार का वह तरीका जो आसानी से परिकल्पना को साकार कर दे।

2. प्रायः रंगमंच की शुरुआत एक लिखित नाटक से होती है। नाटककार अपनी कल्पना से नाट्य लेखन करते हुए रंगमंच के सभी अवयवों के प्रयोग को निध ारित करता है। उदाहरण के लिए- मंच पर लाइट कब आएगी। अभिनेता कहाँ से मंच पर प्रवेश करेगा और कब, कहाँ की ओर प्रस्थान करेगा।

3. नाटक का निर्देशन करते हुए निर्देशक भी प्रायः कुछ तकनीकों का प्रयोग करता है जिसका संबंध नाटक की प्रस्तुति से होता है। पूर्वाभ्यास के दौरान निर्देशक इन तकनीकों के माध्यम से अभिनेता के अभिनय को निर्देशित करता है।

4. दृश्य-बंध वास्तव में नाटक के लिए बने मंच पर प्रस्तुत एक ऐसा रूप है जो प्रायः नाटक में आदि से अंत तक रहता है। यह दृश्य-योजना का समन्वित रूप है।

टिप्पणी

5. दृश्य-श्रव्य तकनीक और 2. आलोकन तकनीक।

6. विकृष्ट मध्यम

7. ग्रीक रंगमंच में पहाड़ों को काटकर बनाए गए रंगमंच के साथ ही मुखौटे (जिनमें ध्वनि विस्तार के लिए चोंगेनुमा व्यवस्था थी), गद्देदार जूते (ताकि अभिनेता का आकार बड़ा दिखे) आदि का प्रयोग मिलता है।

8. पश्चिम रंगमंच में कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग मध्ययुग के बाद से मिलता है।

9. तमिलनाडु और केरल के नाट्ड प्रदर्शनों के कुछ रूपों में आलोकन एक अन्य प्रकार के रोचक दीपकों से किया जाता है। नारियल के खोल को दो अध ँगोलाकार आकृतियों मे काटकर दीपक पात्र के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

10. 'स्ट्रीप लाइट' बांस कि बनाई जाती है।

5.2

1. रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है।

2. प्रकाश व्यवस्था के क्षेत्र मे नया प्रयोग सर्वप्रथम इतालवी कलाकार 'सेबस्तीनों सरेलियो' ने किया। सेबस्तीनों सरेलियो ने (1475-1554) वास्तुशिल्प एवं मंच के अलावा दृश्यमूलक चित्र लगानें के विषय मे सोचा। इस जानकारी के साथ रोमन रंगमंच का अनुकरण कर आयताकार हॉल का निर्माण किया। सरेलेयो के अनुसार मंच की पृष्ठभूमि से लेकर 'विंग्स' और 'पैनल' से होते हुए रंगशाला मे रंगीन दृश्यवाली का निर्माण किया गया।

3. रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बोतलों मे रंगीन तरल पदार्थ दल कर उन्हे जलती मोमबत्तियों के सामने रख कर उपयोग किया गया। .

4. सन 1781 ई. गैस बत्ती का आविष्कार हुआ गैस बत्ती का प्रयोग कब किया गया?

5. एम.जे. डुबोसेक ने इसी वृत्त प्रकाश के अनेक महत्वपूर्ण उपकरणों जैसे बेबी लाइट, फ्रेजनल, हेलोजन, पेजेंट, फ्लड लाइट,पी.सी., प्रोफाइल, पार एक अतिरिक्त प्रभाव उत्पन्न करने हेतु इन उपकरणो का प्रयोग शुरू किया।एम.जे.डुबोसेक ने मंच आलोकन मे क्या प्रयोग कियां?

टिप्पणी

5.3

1. रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ़ तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दों, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशो प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधिक विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं– मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं।

2. रंग सज्जा का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करना तथा घटना स्थल की उपयुक्त एवं स्पष्ट पहचान स्थापित करना है। प्रेक्षागृह का पर्दा खुलनें के बाद दर्शक सबसे पहले दृश्य सज्जा का ही अवलोकन करती है। इससे वह सहज ही अनुमान लगा लेती है कि संपूर्ण नाटक का घटना स्थल युद्धभूमि है,घर का अतिथि कक्ष है।

3. नाट्य का स्थल निर्धारण,नाट्य क्रिया में अभिवृद्धि, नाट्य क्रिया को अलंकृत करना, उसे रोचक बनाना।

4. रेखाओं, रंगों एवं अन्य तत्वों के माध्यम से रोचक संयोजन बनाकर रंग सज्जा द्वारा आकर्षक एवं अर्थपूर्ण पृष्ठभूमि का निर्माण किया जा सकता है।

5.4

1. रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रस्तुत बनानें में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच मे अभिनय, मंचपरिकल्पना, रूपसज्जा, निर्देशन, वस्त्रसज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होनें के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखरती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है,चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

2. दृश्यता, विश्वसनीयता, प्लास्टिक क्वालिटी, कंपोजीशन, मूड

3. तीव्रता, रंग, वितरण, गति

4. फ्लड लाइट, स्पॉट लाइट, इफेक्ट लाइट

टिप्पणी

5.5

1. नाटक के प्रभाव को तीव्र करनें के लिए ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि तकनीक से यहाँ तात्पर्य पात्रों की वाणी और संवादों के बोलने से उत्पन्न ध्वनि न होकर मंच पर संगीत या कुछ विशेष ध्वनियों से है जो वातावरण को बनाने में सहायक होती हैं।

2. श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाता है।

3. ध्वनि प्रभाव के प्रकार हैं

   यथार्थवादी ध्वनिप्रभाव

   सांकेतिक ध्वनि प्रभाव

   सामूहिक ध्वनि प्रभाव

   प्रभाववादी ध्वनि प्रभाव

   सांगीतिक प्रभाव

4. चलते हुए अभिनेता के पैरों की आवाज आदि की ध्वनियों को फोले साउंड कहते हैं।

6

मुद्राराक्षस

विशाखदत्त संस्कृत साहित्य के एक प्रमुख नाटककार हैं। उनके द्वारा रचित मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत नाट्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नाटकों में से एक है। नाटककार विशाखदत्त ने ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रसंगों को बहुत ही सुंदरता के साथ इस नाटक में प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व संस्कृत नाटकों की रचना में प्रेम कथाओं का प्रयोग कथानक के रूप में देखने को मिलता है किंतु इस श्रृंखला में मुद्राराक्षस अपनी समसामयिक व राजनैतिक कथावस्तु की विशेषताओं के साथ स्वयं को उस परंपरा में बिल्कुल अलग और नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करता है।

शास्त्रीय परंपरा में नाट्य लेखन के क्षेत्र में मुद्राराक्षस एक ऐसा नाटक है जिसमें कूटनीतिक विषय को आधार बनाया गया है। ऐसे में इस नाटक के विषय में जानना अत्यंत आवश्यक है। अतएव इस पाठ में हम मुद्राराक्षस नाटक की इन्हीं विशेषताओं पर अपना ध्यान केंद्र करेंगे

अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप–

- नाटककार विशाखदत्त के विषय में जानते हैं;
- मुद्राराक्षस नाटक के विषय में जानते हैं;
- मुद्राराक्षस नाटक की कथावस्तु को जानते हैं;
- मुद्राराक्षस नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण जानते हैं; और

टिप्पणी

- मुद्राराक्षस नाटक की रंगशैली को समझते हैं।

6.1 विशाखदत्त का सामान्य परिचय

नाटक के भरत वाक्य में विशाखदत्त ने राजा का नाम चंद्रगुप्त स्वीकार किया है। ऐसे में विद्वानों का मत है कि अपने नाटक में विशाखदत्त चंद्रगुप्त मौर्य के वर्णन के माध्यम से अपने आश्रय दाता चंद्रगुप्त द्वितीय की ओर संकेत करते हैं जिनका समय काल 375 से 413 ईसवी रहा है। विशाखदत्त में जिस पाटलिपुत्र का वर्णन किया है वह अत्यंत समृद्ध नगर है। अगर इतिहास को देखें तो छठवीं शताब्दी तक आते-आते हर्षवर्धन के समय तक पाटलिपुत्र छिन्न-भिन्न हो गया था। इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस नाटक में बौद्ध धर्म के जो संकेत प्राप्त होते हैं उससे पता चलता है कि उस समय में बौद्ध धर्म का पुनः प्रवर्तन हो रहा था। इस आधार पर विद्वानों ने विशाखदत्त का समय पांचवी शताब्दी का आरंभ स्वीकार किया है।

विशाखदत्त के नाटक के भरतवाक्य में राजा अवंती वर्मा का निर्देश ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध होता है। राजा अवंती वर्मा मौखरी वंश के कन्नौज के राजा थे। इन्हीं अवंती वर्मा के बेटे ग्रह वर्मा से हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह हुआ था। अवंती बर्मा का समय छठी शताब्दी का अंत और सातवीं शताब्दी का प्रारंभ है। छठी शताब्दी के अंत में ही पश्चिम उत्तर भारत में गोंडों का आतंक प्रबल था राजा अवंती वर्मा ने थानेश्वर की राजा प्रभाकर वर्धन की मदद से गोंडों को पराजित किया था। यह ऐतिहासिक घटना 582 ईसवी की है अगर इन आधारों को मानकर विशाखदत्त का समय निर्धारित किया जाए तो उनका समय छठी शताब्दी का अंत निर्धारित होता है। इसी समय काल को विद्वानों ने आपसी सहमति से स्वीकार किया है।

मुद्राराक्षस के अतिरिक्त विशाखदत्त द्वारा लिखे गए दो और नाटकों का उल्लेख मिलता है-(1) देवी चंद्रगुप्त और (2) अभिसारिकावंचितक। इनमें से दूसरा नाटक अप्राप्त है। पहला नाटक देवी चंद्रगुप्त भी प्रणयकथा होने के साथ ही साथ राजनैतिक भी है।

6.2 मुद्राराक्षस का सामान्य परिचय

मुद्राराक्षस एक रोचक और नवीन प्रकृति का नाटक है। सात अंक के इस नाटक में चाणक्य, चंद्रगुप्त और नंद के स्वामिभक्त अमात्य राक्षस केन्द्र में हैं। नन्द का नाश कर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजगद्दी पर बैठा दिया है। चाणक्य अपनी कूटनीति से नंद के विश्वासपात्र मंत्री राक्षस को चंद्रगुप्त का मंत्री बनाना चाहता है लेकिन राक्षस को यह स्वीकार नहीं है। वह चंद्रगुप्त के विरुद्ध तरह-तरह के 'षड्यंत्र करता है। अंत में चाणक्य अपने कूटनीतिक कौशल से अपने उद्देष्य में सफल होता है। पूरा नाटक इसी कूटनीतिक चालों पर आधारित है।

विशाखदत्त का राजनैतिक पांडित्य इस नाटक में स्पष्ट रूप से देखा जासकता है। वास्तव में इस तरह के बौद्धिक नाट्य रचना को लिखना बहुत ही कठिन कार्य है। नाटककार ने बड़े ही

ध्यान से रोचकता को बनाए रखकर पूरे कथानक को नाटक में परिणित किया है। यह एक घटना प्रधान नाटक है जिसका मुख्य रस वीर रस है। उत्साह भाव हमें प्राय: प्रत्येक पात्रों में दिखाई देता है। नाटक में कहीं भी प्रत्यक्ष युद्ध नहीं होता लेकिन अपनी चतुरता से विशाखदत्त ने संवादों के माध्यम से इस रस को प्रयुक्त किया है।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. विशाखदत्त कौन हैं?

....

2. विशाखदत्त की रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?

....

3. मुद्राराक्षस किस प्रकृति का नाटक है?

....

4. मुद्राराक्षस का मुख्य कथानक किस पर आधारित है?

....

5. मुद्राराक्षस का मुख्य रस क्या है?

....

6.3 मुद्राराक्षस की कथावस्तु

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नाटक की कथा को 7 अंकों में विभक्त किया है। कथानक में चाणक्य द्वारा अपनी कूटनीति से राक्षस को चंद्रगुप्त का अमात्य बनाए जाने की कथा मुख्य है। वीर रस प्रधान इस नाटक में अंकों के अनुसार कथा का विकास क्रम इस प्रकार है-

अंक-1

इस अंक के आरंभ में सामान्य रूप से चंद्रग्रहण के अवसर पर ब्राह्मण भोज की चर्चा चल रही है। तभी अचानक नेपथ्य से एक स्वर उठता है कि मेरे रहते ऐसा कौन है जो चंद्रगुप्त को ग्रस ले। सूत्रधार सामने आकर दर्शकों को बतलाता है कि यह कौटिल्य हैं और तभी चाणक्य का मंच पर प्रवेश होता है। प्रवेश के साथ ही चाणक्य अपनी व्यथा बतलाता है कि नंद वंश के विनाश से क्रोधित होकर उसका मंत्री राक्षस पर्वतक राज मलयकेतु से जाकर मिल

टिप्पणी

गया है और चंद्रगुप्त के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहा है। चाणक्य अमात्य राक्षस को भली-भांति जानता है और वह चाहता है कि किसी तरह से उसको प्रभावित कर चंद्रगुप्त का अमात्य बनने के लिए राजी कर लिया जाए। अपनी इन भावनाओं को ना बतलाते हुए चाणक्य एक कूटनीतिक योजना बनाता है। चाणक्य को ज्ञात होता है कि अमात्य राक्षस का परिवार पाटलिपुत्र के कुसुमपुर में ही चंदनदास के पास है। राक्षस के प्रिय जन विश्वासी कायस्थ शकटदास और सिद्धार्थक हैं। चाणक्य को राक्षस की एक मुद्रा भी मिल जाती है। वह शकटदास से एक पत्र लिखवाता है और उस पर राक्षस की मुद्रा के निशान बनवा लेता है। राक्षस और उसकी मुद्रा इस नाटक के कथानक का प्रमुख आधार हो जाते हैं इसीलिए नाटक का नाम भी मुद्राराक्षस रखा गया है।

अंक-2

इस अंक में चंद्रगुप्त के विरोध में किए जाने वाले षड्यंत्र को दिखाया गया है। दूसरे अंक की शुरुआत में ही नंद के भव्य राज प्रसाद में आगमन करते समय चंद्रगुप्त को मारने की योजना बनाई जा रही है। हथिनी पर बैठकर चंद्रगुप्त राज प्रसाद में प्रवेश कर ही रहा होता है कि तभी विशाल तोरण द्वार षडयंत्र पूर्वक गिरा दिया जाता है। हथिनी तेजी से आगे बढ़कर चंद्रगुप्त को बचा लेती है। इस तरह चंद्रगुप्त मरते मरते बच जाता है।

अंक-3

इस अंक में चंद्रगुप्त और चाणक्य के बीच कौमुदी महोत्सव के आयोजन को लेकर कड़वाहट बढ़ जाती है। चंद्रगुप्त शरद पूर्णिमा के दिन इस आयोजन का आदेश दे देता है जबकि चाणक्य इसे बंद करा देता है। एक और अवसर आता है जब चाणक्य राजा को दान देने से रोक देता है। चंद्रगुप्त क्रोधित होकर चाणक्य की अवहेलना शुरू कर देता है। चाणक्य अपने और चंद्रगुप्त के बीच हुए इस मतभेद को प्रचारित प्रसारित करवाता है ताकि यह खबर शत्रु तक पहुंच जाए और अंतत: होता भी यहीं है। यह खबर शत्रु तक पहुंच जाती है।

अंक-4

इस अंक में अमात्य राक्षस मलयकेतु को पिछले अंक में वर्णित चंद्रगुप्त और चाणक्य के मध्य कड़वाहट की खबर स्वयं देता है। मलयकेतु आश्वस्त हैं कि चाणक्य के दोषों के कारण ही चंद्रगुप्त अपनी प्रजा से विरक्त है। यदि चाणक्य हट जाए तो जनता चंद्रगुप्त के प्रति पहले से अधिक लगाव महसूस करेगी।

अंक-5

इस अंक में पर्वतराज मलयकेतु को पता चलता है कि उसके पिता चाणक्य के षड्यंत्र से नहीं बल्कि अमात्य राक्षस की दुष्ट योजना के कारण मारे गए हैं। मलयकेतु और राक्षस के बीच मतभेद बढ़ने शुरू हो जाते हैं। मलयकेतु राक्षस को संदेह की नजर से देखता है। दोनों

टिप्पणी

के बीच कड़वाहट बढ़ने लगती है। अब अमात्य राक्षस खुद को असहाय महसूस करता है और धीरे-धीरे निराशा में डूब जाता है।

अंक-6

मलयकेतु से अपमानित होकर राक्षस पाटलिपुत्र में आता है। उसे पता चलता है कि चंदनदास पर परेशानियां आ पड़ी है। मित्र चंदनदास का केवल इतना दोष था कि उसने अमात्य राक्षस के परिवार को छुपने के लिए जगह दी थी और वह मित्रता के कारण राजा को कुछ नहीं बता रहा था। राजा ने उसे मृत्युदंड दिया है और उसे फांसी देने की तैयारी की जा रही है।

अंक-7

राक्षस अपने मित्र चंदनदास से मिलता है और उसके सामने अपना भेद प्रकट करता है कि मैं ही वो राक्षस हूँ जिसके कारण उसे मृत्युदंड दिया गया है। तभी नेपथ्य से चाणक्य का प्रवेश होता है। चाणक्य राक्षस को अपनी कूटनीतिक चाल के बारे में बतलाता है। अंत मे राक्षस चंद्रगुप्त के अमात्य पद को स्वीकार करता है। चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसका राज्य वापस करता है और चंदनदास को व्यापार संघ का प्रमुख घोषित करता है। इस प्रकार चंद्रगुप्त की मंगल कामना के साथ नाटक का अंत होता है।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. मुद्राराक्षस नाटक में कितने अंक हैं?

....

2. नाटक का नाम मुद्राराक्षस क्यों है?

....

3. मुद्राराक्षस के अंक तीन में क्या घटित होता है?

....

4. चंदनदास को मृत्युदंड क्यों दिया जाता है?

....

5. चाणक्य राक्षस को चंद्रगुप्त का अमात्य क्यों बनाना चाहते है?

....

टिप्पणी

6.3 मुद्राराक्षस नाटक के पात्र

मुद्राराक्षस नाटक का पूरा कथानक चाणक्य, राक्षस, चंद्रगुप्त और मलयकेतु को ही केन्द्र में रखकर बनाया गया है।

चंद्रगुप्त

चंद्रगुप्त को मुद्रा राक्षस नाटक का नायक विद्वानों ने स्वीकार किए यद्यपि चंद्रगुप्त का प्रवेश पूरे नाटक में केवल दो ही बार होता है। पहली बार सती अंक में जब चाणक्य से झगड़ा करना होता है तब और दूसरी बार नाटक के अंत में जब राक्षस को मंत्री पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित करना होता है। चंद्रगुप्त इन्हीं दो अवसरों पर मंच पर उपस्थित होता है। इसके आधार पर नाटक में चंद्रगुप्त के चरित्र को समझा जा सकता है। चंद्रगुप्त एक धीरोदान्त नायक है। स्वभाव से वह विनम्र है।

चन्द्रगुप्त गुरु भक्त भी है। वह चाणक्य की सभी बाते मानता है। जहां पर वह गुरु से असहमत होता है वहां उसे दु:ख की अनुमति भी होती है।

मलयकेतु

मलाई केतु स्वभाव से सावधान है, विश्वास पात्र हैं और कार्य को शीघ्र करने वाला है। वह अपने इस प्रभाव पर गर्व करता है कि वह अपने मंत्री के बस में नहीं जबकि नाटक में वह ग्रहण के वक्त में दिखाई देता है उसे जिस प्रकार की मंत्रणा मिलती है, मलयकेतु वैसा ही करता है। चाणक्य द्वारा रचे गए षड्यंत्र के चलते वह राक्षस पर आरोप करने वाले अपने ही हितेषियों को मरवा डालता है। उसे यह भान नहीं होता कि हो सकता है यह षड्यंत्र रचा जा रहा हूं। उसे मनुष्य की परख नहीं है। इसीलिए वह अपने शत्रुओं पर विश्वास करता है और मित्रों पर विश्वास।

चाणक्य

चाणक्य स्वभाव से अत्यंत बुद्धिमान प्रतिज्ञा वाला मेधावी और कूटनीति में प्रवीण कुशल राजनीतिज्ञ चरित्र है। चाणक्य ने अपनी प्रतिज्ञा और बुद्धि के द्वारा नंद वंश का नाश करने का प्रण लिया था और उसे चंद्रगुप्त के माध्यम से पूर्ण भी किया। नाटक में चाणक्य ने राक्षस को चंद्रगुप्त का मंत्री बनाने का संकल्प किया है और अंत में उसे भी करता है। चाणक्य में दूरदर्शिता का प्रबल गुण है। नाटक की प्रत्येक घटना चाणक्य के अनुसार ही घटित होती है। इस प्रकार से पूर्व रचना करता है। नाटक में कहीं भी कोई ऐसा अवसर दिखाई नहीं पड़ता जहां यह सभी चरित्र चाणक्य पर अविश्वास करते हुए दिखाई देते हैं। चाणक्य के अंदर एक प्रमुख गुण हैं कि उसे व्यक्तियों की पहचान है। चाणक्य के सभी गुप्तचर विश्वास करते हैं। उसने चंद्रगुप्त के लिए भेजी गई विषकन्या को भी प्रवर्तक के लिए प्रयोग किया। चंद्रगुप्त

टिप्पणी

के एकछत्र राज्य के पीछे चाणक्य की कुशल कूटनीति थी। चाणक्य सच्चे अर्थों में कुशल राजनीति राजनीतिक होते हुए भी विद्वान थे। राजा का गुरु होते हुए भी वे अपनी पर्णकुटी में रहते थे और मन से अपने शत्रु के गुणों की प्रशंसा भी करते हैं। अपने कूटनीति के बल पर बिना किसी कारण होने वाले रक्त पात्र को भी नहीं होने देते हैं।

राक्षस

यह मुद्राराक्षस एक महत्वपूर्ण चरित्र है। राक्षस के हृदय में अपने स्वामी के प्रति अटल भक्ति है। नंद के मरने के बाद भी उसका प्रतिशोध लेने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा है। चाणक्य भी राक्षस के गुण को जानता है। इसीलिए वह उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बनाना चाहता है। राक्षस एक सहज विश्वासी व्यक्ति है। वह कूट कुटिल नीति को नहीं जानता है इसीलिए चाणक्य द्वारा भेजे गए व्यक्तियों को वह अपना घनिष्ठ मित्र और विश्वास पात्र मानता है। वह अंत में ही जान पाता है कि उसका शत्रु कौन था। जिस चीज से चाणक्य आश्चर्यचकित होता है उसे राक्षस सहज ही स्वीकार करता है। राक्षस थोड़ा सावधान चरित्र भी है। वह सिद्धार्थ को अपने आभूषण सहर्ष से दे देता है। जो कि मलयकेतु ने उसे भेजे थे। वह प्रत्येक परिस्थिति को साधारण और सहज रूप में ही स्वीकार करता है। स्वभाव से वह पराक्रमी भी है।

नाटक के अन्य पात्रः-

वीभत्सक

यह चरित्र राक्षस के आदेश पर चंद्रगुप्त को सोते हुए ही मारने गया था। वो अपने साथियों के साथ सुरंग में छिपा हुआ था। चाणक्य की नजर से वह नही छुप पाया था। दरार से चींटियों की कतार को देखकर चाणक्य को शक हुआ था और उसने दीवार में आग लगवा दी थी। यह एक आज्ञाकारी पात्र था।

पर्वतक

चाणक्य ने पर्वतक की मदद से नंद का नाश किया था और उसके बाद उसके मंत्री राक्षस को पराजित किया था। चाणक्य ने कुसुमपुर को जीतने के लिए आधा राज्य बांट देने की प्रतिज्ञा की थी लेकिन जब राक्षस हार गया तो उसने पर्वतक को अपनी ओर कर लिया। राक्षस ने जिस विषकन्या को चंद्रगुप्त को मारने के लिए भेजा था उसे चाणक्य ने पर्वतक के पास भेज कर उसे मरवा दिया था।

वैरोधक

विरोधक पर्वत तक का भाई था पर्वतक की मरने के बाद चाणक्य ने आधा राज्य विरोधक को दिए जाने का प्रस्ताव दिया और उसे भीतर बुलाया। बर्बर जो कि चंद्रगुप्त को मारने के लिए बैठा था उसने विरुद्ध की हत्या कर दी।

विष्णुशर्मा/निपुणक

निपुणक चाणक्य का मित्र है जो शुक्र नीति और 64 कलाओं का ज्ञाता है। वह निपुण के नाम से भेष बनाकर रहता था। नाटक में विष्णु शर्मा निपुण के रूप में चाणक्य का गुप्त चर बनकर रहता है। कथानक में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि यही राक्षस की अंगूठी लाता है और चाणक्य को देता है

सिद्धार्थक

सिद्धार्थ भी चाणक्य गुप्तचर है जो शकट दास के साथ मिलकर राक्षस के पास रहता है और उसका भेद चाणक्य तक पहुंचाता है

समिद्धार्थक

अपने मित्र के साथ वह चांडाल का भेष बनाकर रहता है। यह भी चाणक्य की गुप्त चर के रूप में सामने आता है

भागुरायन

यह चाणक्य का गुप्तचर है और मलाई केतु के मित्र के रुप में वह नाटक में उपस्थित रहता है भागुरायन गुप्तचर कला में निपुण हैं। वह अपना भेद छिपाकर मलाई केतु के दिमाग में इस तरह की बातें डालता है जिसके परिणाम स्वरूप राक्षस और मलयकेतु में फूट पड़ जाती है।

जीवसिद्धि क्षपणक अथवा भदंत

यह चाणक्य का गुप्त चर था और निपुण ज्योतिषी भी था।

विजयवर्मा

विजय वर्मा चंद्रगुप्त की सेना से चाणक्य के कहने पर मलाई केतु के यहां योजना बना कर जाता है और उसकी सूचनाएं चाणक्य तक पहुंचाता है

अचलदत्त कायस्थ

यह चंद्रगुप्त का मुंषी है।

शोणोत्तरी

यह चंद्रगुप्त का द्वारपाल है।

टिप्पणी

विजयपाल दुर्गपाल

यह चंद्रगुप्त का प्रधान सेवक है।

विश्वासु

यह वह ब्राम्हण है जिसे चंद्रगुप्त दान देता है।

कापाल पाशिक और दंड पाशिक

ये चांडाल हैं जो सूली पर चढ़ाने का काम करते हैं।

शारंगरव

यह चाणक्य का शिष्य है।

हिंगुरात

यह चंद्रगुप्त के द्वारपालों का प्रधान है जो चाणक्य की आज्ञा से मलयकेतु के पास जाता है।

बलगुप्त

मलयगुप्त का भेद लेने के लिए उसके पास रहता है।

राजसेन

यह चंद्रगुप्त के बचपन का सेवक है जो चाणक्य के कहने पर मलयकेतु की सेना में जाता है।

भद्रभट

यह भी चाणक्य का गुप्तचर था जो मलय केतु का सेवक बनकर रहता है।

चंद्रभानु

यह चाणक्य की आज्ञा से मलयकेतु के यहां चला गया था।

सिंहबल दत्त

यह चंद्रगुप्त का सेनापति था जो चाणक्य के कहने पर मलयकेतु से जा मिला था।

रोहिताक्ष

ये मालवा नरेश का पुत्र था जो चाणक्य के कहने पर मलयकेतु से जा मिला था।

दीर्घचक्षु

मलयकेतु का द्वार रक्षक था।

शिखरसेन

ये मलयकेतु का सेनापति था। इसे ही हाथी से कुचलवाने की आज्ञा पर्वतक ने दी थी।

सर्वार्थसिद्धि

यह राजा नंद का भाई था राजा नंद के मरने के बाद राक्षस ने इसे गद्दी पर बैठा दिया था। यह चाणक्य के डर से राज्य से भागकर जंगल पहुंच गया था, जहां जीव सिद्धि ने उसे मरवा डाला था।

वक्रनाश

महानंद के पहले नंद वंश का मंत्री

शकटार

यह नंद वंश का मंत्री था और जाति से शूद्र था।

विचक्षणा

यह राजा नंद की दासी थी।

प्रियंबदक

राक्षस का सेवक है।

चंदनदास

यह पाटलिपुत्र का व्यापारी है जो राक्षस का मित्र है। राक्षस ने अपने परिवार को इसी के यहां शरण दी थी जिसके लिए इसे फांसी की सजा दी गई थी

पाठगत प्रश्न 6.3

1. मुद्राराक्षस का नायक कौन है?

   ....

टिप्पणी

2. चाणक्य कौन है?

....

3. राक्षस कौन है?

....

4. चंदनदास को फांसी क्यों दी जाती है?

....

5. भद्रभट कौन है?

....

6. निपुणक कौन है?

....

7. सिद्धार्थक कौन है?

....

8. वैरोधक कौन है?

....

9. शिखरसेन कौन है?

....

10. शाकटार कौन है?

....

6.4 मुद्राराक्षस की रंग शैली

विशाखदत्त द्वारा लिखित नाटक मुद्राराक्षस एक घटना प्रधान नाटक है। वीर रस को केंद्र में रखकर नाटककार ने सभी पात्रों में उत्साह के भाव को प्रमुखता दी है। पूरे कथानक में सभी पात्र जिस तरह का संवाद करते हैं उससे उनमें अतिरेक उत्साह और ऊर्जा के दर्शन होते हैं। सामान्यतया ओजस्वी संवाद, युद्ध का वर्णन, वीरों की वीरता जैसे कथनों की इस नाटक में

टिप्पणी

भरमार है। नाटक के केंद्र में चाणक्य है और चाणक्य के कथनों में वीरता के भाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। बिना युद्ध के ही चाणक्य ने अपनी कूटनीति से राक्षस को पराजित कर दिया। यही विशाखदत्त की कुशलता है।

मुद्राराक्षस नाटक में स्त्री पात्र और विदूषक का अभाव है। नाटक में चंदनदास की पत्नी कुछ समय के लिए अवश्य मंच पर प्रवेश करती है लेकिन कथानक को गति देने में उसकी कोई विशिष्ट भूमिका दिखाई नहीं देती। हास्य की योजना भी विदूषक के द्वारा विशाखदत्त ने नहीं की है। संभवत इसे वह अपने कथानक की गंभीरता के लिए उचित नहीं मानते हैं। लेकिन गंभीर होने के बाद और विदूषक के प्रयोग ना किए जाने के बाद भी नाटक की रोचकता में कहीं कोई कमी नहीं आई है।

यदि मुद्राराक्षस नाटक का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि उन्होंने काव्य के दोषों से नाटक को बचाया है। नाटक में नाटक की शैली उन्होंने रहने दी है। भाषा सरल है और उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण की अधिकता है। इस नाटक में अलंकारों का प्रयोग बहुत ही कम किया गया है। रूपक, अनुप्रास और उपमा जैसे अलंकार इसमें प्रयुक्त हुए हैं। संवादों में काव्य की अपेक्षा गद्य का प्रयोग अधिक होने से नाटक की स्वाभाविकता बढ़ गई है। अपने कूटनीतिक विषय के कारण संस्कृत नाट्य साहित्य में मुद्राराक्षस को एक विशिष्ट नाटक माना जाता है। शास्त्रीय परंपरा में अपनी किस्म का आकर्षक और अनूठा नाटक है।

आपने क्या सीखा

- विशाखदत्त का समयकाल छठी शती का अंत है।
- विशाखदत्त के पूर्वज राजा थे अतएव राजनीति और कूटनीति का ज्ञान उन्हें विरासत में ही प्राप्त था।
- विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नाटक की रचना की है।
- विशाखदत्त द्वारा लिखित दो और नाटकों की चर्चा मिलती है-देवी च्रद्रगुप्त और अभिसारिकावंचितक।
- मुद्राराक्षस एक घटना प्रधान नाटक है।
- मुद्राराक्षस में सात अंकों मे कथानक का वर्णन है।
- मुद्राराक्षस का मुख्य रस वीर है।
- चाणक्य द्वारा चंद्रगुप्त के विरोधी और नंद के मंत्री राक्षस को अमात्य पद पर बैठाकर चंद्रगुप्त के राज्यारोहण को निर्विरोध करना ही इस नाटक की मुख्य कथा है।

स नाटक के मुख्य पात्र हैं:- चंद्रगुप्त, चाणक्य, मलयकेतु और राक्षस। इनके अतिरिक्त नाटक में 29 अन्य सह पात्र हैं।

- मुद्राराक्षस में राजनीति और कूटनीति के विषय का वर्णन है।
- नाटक में गद्य का भी अधिक प्रयोग है।
- मुद्राराक्षस में विदूशक और स्त्री पात्रों का अभाव है।
- पांचवे अंक में जीमूतवाहन का गरुड़ की चोंच से रक्त रंजित होने, गरुड़ द्वारा पश्चाताप करने की कथा है।

प्रायोगिक प्रश्न

1. मुद्राराक्षस की मुख्य कथा क्या है?
2. विशाखदत्त के बारे में आपने क्या जाना?
3. चाणक्य चरित्र के बारे में बतलाइए?
4. मुद्राराक्षस के नाट्य शिल्प के विशय में बतलाइए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. विशाखदत्त मुद्राराक्षस के नाटककार हैं। उनके पूर्वज राजा थें।
2. मुद्राराक्षस, देवी चंद्रगुप्त और अभिसारिकावंचितक हैं।
3. मुद्राराक्षस राजनीति व कूटनीति प्रकृति का नाटक है।
4. मुद्राराक्षस का मुख्य कथानक चाणक्य द्वारा राक्षस को चंद्रगुप्त का मंत्री बनाने की कूटनीति पर आधारित है।
5. मुद्राराक्षस का मुख्य रस वीर है।

6.2

1. मुद्राराक्षस नाटक में सात अंक हैं।

टिप्पणी

2. चाणक्य को राक्षस की एक मुद्रा भी मिल जाती है। वह शकटदास से एक पत्र लिखवाता है और उस पर राक्षस की मुद्रा के निशान बनवा लेता है। राक्षस और उसकी मुद्रा इस नाटक के कथानक का प्रमुख आधार हो जाते हैं। इसीलिए नाटक का नाम भी मुद्राराक्षस रखा गया है।

3. चंदनदास को मृत्युदंड दिया जाना चाणक्य की कूटनीति का हिस्सा है। उसे पता था कि चंदनदास ने ही राक्षस के परिवार को आश्रय दिया है। यदि वह ऐसा करेगा तो राक्षस अवश्य ही उसे बचाने आएगा।

4. चाणक्य राक्षस के गुणों से भलीभांति परिचित है। वह एक ईमानदार और स्वामिभक्त है। दूसरा कारण यह भी है कि इससे चंद्रगुप्त का विरोध भी समाप्त हो जाएगा।

6.3

1. मुद्राराक्षस का नायक चंद्रगुप्त है।
2. चाणक्य चंद्रगुप्त का गुरु है। उसने ही नंद वंश का नाश कर चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बैठाया था।
3. राक्षस राजा नंद का मंत्री है।
4. चंदनदास को फांसी इसलिए दी जाती है कि उसने राक्षस की सहायता की थी।
5. भद्रभट चाणक्य का भेदिया है जो मलयकेतु का नौकर बनकर रहता है।
6. निपुणक चाणक्य का मित्र है जो राक्षस की अंगूठी लेकर आया था।
7. सिद्धार्थक चाणक्य का भेदिया है जो शकटदास का मित्र बनकर राक्षस के पास रहता है।
8. वैरोधक पर्वतक का भाई है जो बर्बर द्वारा मारा जाता है।
9. शिखरसेन मलयकेतु का सेनापति है जिसे पर्वतक हाथी से कुचलवाने की आज्ञा देता है।
10. शकटार नंद वंश का मंत्री है और जाति से शूद्र है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

नाट्यकला (385) प्रायोगिक पक्ष

आदर्श प्रश्न पत्र

उच्चतर माध्यमिक स्तर **समय- 1 घंटा**

अधिकतम अंक- 40

- सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक का है। 5×8=40

भाग-1. प्रश्न संख्या 1 से 5 तक का उत्तर शिक्षार्थी द्वारा स्वयं से अभिनय करके देना है।

1. आंगिक अभिनय के प्रकारों में से किसी एक प्रकार के आंगिक अभिनय का अभिनय करके दिखाइए।
2. सामान्य अभिनय के प्रयोग में अनुलाप का अभिनय करके दिखाइए।
3. सात्त्विक भावों को बताते हुए सत्त्व का प्रयोग करके अभिनय करके दिखाइए।
4. मुद्राराक्षस नाटक के किसी एक पात्र का अभिनय करके दिखाइए।
5. रस के नौ प्रकारों में से किसी एक रस की भाव भंगिमा को अभिनय द्वारा स्पष्ट कीजिए।

भाग-2 प्रश्न संख्या 6 से 8 तक के प्रश्नों का उत्तर शिक्षार्थी द्वारा मौखिक रूप से स्पष्ट करके बताना है।

6. रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था क्यों आवश्यक है। स्पष्ट कीजिए।
7. रंग तकनीक के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
8. अपने पास उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करते हुए किसी एक सजीव की निर्माण विधि को बताइए।

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)
ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62, नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)
वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393 आईएसओ 9001: 2008 प्रमाणित